भारत का विधि आयोग

न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली

पर

80 वीं रिपोर्ट

10 अगस्त, 1979.

डी०ओ०सं०एफ० 2(12)/77 एल०सी०

भारत सरकार

के

न्यायमूर्ति श्री एस०एन० शंकर

विधि आयोग के सदस्य

ए विंग, 7 वीं मंजिल

शास्त्री भवन, नई दिल्ली – 110001

अगस्त 10, 1979

प्रिय मंत्री जी,

न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली से सम्बन्धित विधि आयोग की 80वीं रिपोर्ट में प्रेषित कर रहा हूं। संघ सरकार के एक निर्देश के अनुसार आयोग द्वारा इस विषय को विचारार्थ लिया गया था। संगत पत्र व्यवहार इस रिपोर्ट के प्रथम अध्याय में सविस्तार दिया गया है।

यह रिपोर्ट मुख्यतया न्यायमूर्ति श्री एच०आर० खन्ना द्वारा जब वह आयोग के अध्याय थें, तैयार की गयी थी। रिपोर्ट पर उनके हस्ताक्षर होने के पूर्व ही उन्होंने त्याग पत्र दे दिया था अतः इस रिपोर्ट पर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ट से उनकी पूण सहमति है।

आयोग, श्री पी० एन० बख्शी, आयोग के सदस्य सचिव द्वारा की गई सहायता के प्रति अपनी सराहना और प्रशंसा प्रकट करता है, जिसके कारण यह रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सकी।

साभार।

आपका निष्ठापूर्वक

ह०/-

(एस० एन० शंकर)

श्री एस०एन० कक्कड,
मंत्री—विधि, न्याय और कम्पनी कार्य,
नई दिल्ली ।

1—6 M of LJ & CA/ND/79

विषय वस्तु

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	परिचय	1
2.	विषय का महत्व	5
3.	अन्य अनेक देशों में स्थिति	9
4.	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	16
5.	संवैधानिक प्रावधान एवं वर्तमान प्रणाली	22
6.	उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली के सम्बन्ध में संस्तुति	28
7.	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली के सम्बन्ध में संस्तुति	39
8.	सारांश	42
9.	संस्तुतियों का संक्षेप	43

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1	सरकिट जजेज नामिनेशन कमीशन—यू०एस०ए० . . .	50
परिशिष्ट 2	भारत के विधि आयोग द्वारा प्रसारित प्रश्नावली . .	52
परिशिष्ट 3	प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों का सारणीकरण . . .	57

अध्याय 1

परिचय

विधि आयोग को निर्देश।

1.1 विधि आयोग के सदस्य-सचिव को विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय के सचिव के दिनांक 29 दिसम्बर, 1977 के पत्र के अनुसार प्रधान मंत्री ने निर्देश दिया कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न का विचार किया जाये। विधि मंत्री का दृष्टिकोण था कि यह प्रश्न नए विधि आयोग को निर्दिष्ट किया जाये जिससे आयोग समस्या पर गहराई से विचार कर सके और सुधार की संभावनाओं का पता लगा सके। पत्र में इस सुझाव को भी निर्दिष्ट किया गया था कि उच्चतम न्यायालय के तीन अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्तियों का एक अनौपचारिक परामर्शदाता पैनल हो और यह भी इंगित किया गया था कि परामर्शदाता पैनल रखने से कुछ संवैधानिक कठिनाइयां भी हो सकती थीं। पत्र में मंत्रालय द्वारा तैयार किये गये पत्रों का भी निर्देश था।

अध्यक्ष का पत्र

1.2 पत्र प्राप्त होने पर उन कागजातों को मंगाया गया और विधि आयोग द्वारा उन्हें देखा गया। आयोग के अध्यक्ष ने जनवरी 24, 1978 को विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री को अनेक बिन्दुओं पर अपने दृष्टिकोण से अवगत कराते हुए (जिससे सदस्य-सचिव लगभग सहमत थे) एक पत्र भेजा।

अध्यक्ष के विचार---पांच अनुच्छेदों में दिये हुये थे जिनका पाठ निम्नलिखित है:---

"(1) वर्तमान समय में जिस तरह संविधान के प्रावधान हैं उनके अनुसार उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अनौपचारिक परामर्शदात्री-पैनल की नियुक्ति की संवैधानिक विधिमान्यता संदेहास्पद है।

(2) यह तय पाये जाने की दशा में कि संविधान के प्रावधानों का संशोधन किया जाये न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी पूरे मामलों और भानुमति के टोकरे को खोलने से हमें बचना होगा। यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि वर्तमान व्यवस्था में जो छिद्र हों उन्हें बन्द किया जाये जिससे नियुक्ति के मामले में पक्षपात अथवा किसी राजनीतिक अथवा दल विशेष के विचार का प्रभाव न पड़ सके अथवा समाप्त हो सके। आमूल परिवर्तन की बात नहीं की जानी चाहिये। आमूल परिवर्तन तो तब आवश्यक होंगे जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी हमारे संविधान द्वारा निर्धारित प्रणाली मूलतः गलत और आंतरतः दोषपूर्ण है। यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमारे संविधान द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की व्यवस्था अधिकांश में त्रुटि रहित है किन्तु व्यवस्था के वास्तविक व्यवहार में कुछ दोष अथवा छिद्र प्रकट हो गये हैं तब उस समय आमूल परिवर्तन की नहीं अपितु कुछ ऐसे उपांतरों की आवश्यकता होगी जिससे वह व्यवस्था और भी दृढ़ हो और छिद्र या दोष समाप्त हो जाएं। इस समय जैसी सलाह दी गई है हमारे संविधान में मैं समझता हूं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली बाद की श्रेणी से संबंधित है। इस उद्देश्य के लिये हमारे संस्थापकों द्वारा निर्मित पद्धति बहुलाश में पूर्णतः सुविचारित हैं। इसमें संदेह नहीं है कि व्यवस्था को कार्यरूप देने में कुछ दोष दिखाई दिये हैं किन्तु वे इस प्रकार के हैं कि समूची व्यवस्था को नष्ट किये बिना परिशुद्ध किए जा सकते हैं। अतएव दोषों की परिशुद्धि करने और छिद्रों को बन्द करने का प्रयत्न होना चाहिए।

(3) मेरी राय में संवैधानिक बाधाओं को पार कर लेने के पश्चात् ऊपर उध्दृत पत्र में दिये पैनल की नियुक्ति वांछनीय होगी।

(4) पैनल (अथवा इसे जो भी नाम दिया जाय, शायद इसे न्यायाधीश नियुक्ति समिति अथवा न्यायाधीश नियुक्ति आयोग, कहना उपयुक्त होगा) में

(क) "भारत के मुख्य न्यायमूर्ति" (पदेन),

(ख) "विधि, न्याय और कम्पनी कार्य के मंत्री" (पदेन), और

(ग) "तीन व्यक्ति, जिनमें से हर एक उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति अथवा न्यायाधीश रह चुका हो, होने चाहिये।

श्रेणी (ग) में बताये हुये पैनल के सदस्य की चार वर्षों के लिये नियुक्ति होनी चाहिये। ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति रोकने के लिये जिनका समयावधान के कारण न्यायाधीशों और वकीलों से संपर्क समाप्त हो गया है, श्रेणी (ग) के व्यक्तियों को सामान्यतया ऐसा होना चाहिये जो पैनल में नियुक्ति के पूर्व उच्चतम न्यायालय में छह वर्ष के भीतर पीठासीन रहे हों। यह सुझाव कि पैनल में केवल उच्चतम न्यायालय के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्ति ही हों, व्यावहारिक नहीं है क्योंकि यह चयन के क्षेत्र को अत्यन्त संकीण बना देगा जो वांछनीय नहीं है।

"पीठासीन मुख्य न्यायमूर्ति को पैनल का अध्यक्ष होना चाहिये। पैनल को न्यायाधीशों के उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियों की उपयुक्ता के बारे में विचार प्रकट करना चाहिये। पैनल के सदस्यों के विचारों में मतभेद होने की दशा में बहुमत का मत ही पैनल का मत समझा जाना चाहिये।

"पैनल द्वारा दिया परामर्श वर्तमान संवैधानिक प्रावधानों में दी गई प्रणाली के अतिरिक्त होगा। राष्ट्रपति को किसी एक व्यक्ति को नियुक्त किये जाने की सलाह दिये जाने के पूर्व पैनल का परामर्श अंतिम चरण में ही लिया जाना चाहिए।

"उपर्युक्त प्रस्ताव का एक परिणाम तो यह होगा कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति दो अवस्थाओं में सामने आवेगा, एक, वर्तमान समय में प्रचलित व्यवहार और संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुरूप और, दूसरे समय, पैनल के अध्यक्ष के रूप में। व्यवस्था की प्रकृति के अनुसार ही इसका कोई विकल्प नहीं है। पैनल की सभा में मुख्य न्यायमूर्ति अन्य सदस्यों को उन तथ्यों से अवगत करायेगा जो उसे दृष्टिगत हुये होंगे। वह कुछ मामलों को स्पष्ट भी कर सकेगा। पैनल को यह भी स्वतंत्रता प्राप्त होगी कि विशेष मामलों में यदि उचित समझे तो अनौपचारिक रूप से बार के किसी सदस्य, महान्यायवादी, महासालिसिटर या महाधिवक्ता से परामर्श करें।

(5) इसके अतिरिक्त में निम्न सुझाव देता हूं:

(i) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के समय, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को संस्तुति करने के पूर्व दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिये। संस्तुतियों वाले पत्र में मुख्य न्यायमूर्ति को यह बयान करना चाहिये कि उसने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श किया है और उनका इस संस्तुति के सम्बन्ध में क्या मत रहा है। साधारणतया मुख्य न्यायमूर्ति के मत से दो वरिष्ठतम सहकर्मियों के मत से मेल खाने वाला मत ही स्वीकार किया जाना चाहिये।

(ii) इसी प्रकार का रास्ता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति में भी अपनाया जाना चाहिये।

(iii) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति में साधारणतया वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रांत कर कोई भी कनिष्ठ न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाना चाहिये।

(iv) यदि मुख्य न्यायमूर्ति के लिये वरिष्ठतम न्यायाधीश की नियुक्ति उपयुक्त नहीं हो तो किसी अन्य उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति अथवा न्यायाधीश साधारणतया मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिये।

(v) इसके अलावा भी हमें बहुधा बाहर के न्यायाधीश को उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करना चाहिये। इस प्रस्ताव की एक हानि तो यह है कि बाहर का मुख्य न्यायमूर्ति स्थानीय प्रतिभाओं से परिचित नहीं होगा किन्तु यह लाभ भी होगा कि दीर्घकाल तक का साथ होने के कारण व्यक्ति की जो निजी पसन्द और नापसन्द बन जाती है उनसे भी वह व्यक्ति मुक्त रहेगा। बाहरी व्यक्ति को स्थानीय प्रतिभाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में कोई अधिक समय नहीं लगेगा। एक बाहरी व्यक्ति मुख्य न्यायमूर्ति के पद को अधिक अनाशक्ति और निष्पक्षता प्रदान करेगा। अतएव हानि से लाभ अधिक हैं।

(vi) हमें एक परम्परा बनानी चाहिये कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक तिहाई संख्या में न्यायाधीश बाहर के राज्यों के हों। यह साधारणतः प्रारम्भिक नियुक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिये स्थानान्तरण के द्वारा नहीं। यह कार्य धीरे धीरे और क्रमिक रूप से किया जाना चाहिये और इस अनुपात में पहुंचने में कुछ वर्ष भी लग सकते हैं।

एक बार यदि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कुछ प्रतिशत राज्य के बाहर का हो तब तो वांछित परिणाम की प्राप्ति का उपाय भी तय हो जावेगा। एक सुझाव संभवतः यह हो सकता है कि प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिये किसी व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करते समय यह भी उल्लेख कर के वह व्यक्ति राज्य के बाहर नियुक्ति से सहमत है अथवा नहीं। यदि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति का प्रस्ताव हो तो पदोन्नयन का अवसर ही अधिकतर मामलों में पर्याप्त उत्प्रेरणा होगी और इस तरह राज्य के बाहर की नियुक्ति की असुविधा समाप्त हो जावेगी। जहां तक अधिवक्ताओं का सम्बन्ध है कुछ लोग राज्य के बाहर की नियुक्ति को लाभप्रद समझ सकते हैं क्यों कि अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् यदि वे चाहें तो अपने ही राज्य में जहां वे पहले वकालत करते थे फिर से वकालत प्रारम्भ कर सकते हैं।

(vii) "उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में वरिष्ठतम न्यायाधीश को नियुक्त करने की सामान्य परम्परा होनी चाहिये। इस परम्परा से हटने का कोई कारण नहीं होना चाहिये जब तक कि परामर्शदाता पैनल द्वारा कोई अन्य मार्ग अनुमोदित न किया जाय।"

उपर्युक्त प्रस्ताव जो बहुत ही मोटे तौर के हैं, न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनैतिक हस्तक्षेप को ही समाप्त नहीं करेंगे वरन् करीब-करीब किसी मुख्य न्यायमूर्ति की व्यक्तिगत पसन्द या नापसन्द की संभावना को भी समाप्त कर सकेंगे।

पत्र के अन्त में अध्यक्ष ने लिखा —

"यदि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों जिसमें मुख्य न्यायमूर्तियों की नियुक्ति का मामला भी सम्मिलित है। पुनर्विचारित होना है और यह इच्छा है कि इस मामले पर विस्तार से दूर तक विचार किया जाय तो

ऐसी अवस्था में इस मामले के सम्बन्ध में विभिन्न देशों में प्रचलित प्रणालियों का भी विचार करना होगा। उच्च न्यायालयों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा बार के सदस्यों तथा अन्य सम्बन्धित जनों के विचारों का भी पता लगाना होगा। तभी इस मामले में विस्तृत रिपोर्ट दी जा सकती है। इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री पहले ही एकत्रित की जा चुकी है।

अध्यक्ष को मंत्री का पत्र।

"1.3 विधि, न्याय और कम्पनी कार्य के मंत्री ने 1 मार्च, 1978 को विधि आयोग के अध्यक्ष को[1] एक पत्र लिखा जिसका सारवान अंश निम्नलिखित है :—

"न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में सुधार के प्रश्न पर आपके 24 जनवरी, 1978 के पत्र के लिये धन्यवाद। आपने पत्र के अन्त के अंश में लिखा है कि यदि मामले पर विस्तृत विचार होना हैं तब यह अनेक देशों में प्रचलित पद्धतियों के प्रकाश में विचार करना होगा। मैं अत्यन्त ही आभारी होऊँगा। यदि मामले पर गहराई से विचार हो और हमें एक सुविस्तृत रिपोर्ट दी जाय।

(2) मैं मुंबई बार एसोशियेशन द्वारा प्राप्त स्मरण पत्र के उद्धरणों को भी संलग्न कर रहा हूं। इस उद्धरण में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्ति के लिये एक न्यायिक नियुक्ति आयोग की प्रस्थापना का सुझाव दिया गया है।"

प्रस्तुत रिपोर्ट उपर्युक्त पत्र के निर्देश के अनुसार दी जा रही है।

अनेक क्षेत्रों से आमंत्रित और प्रतीक्षित सुझाव।

1.4 यह उल्लेखनीय है कि 1 मार्च, 1978 से आयोग ने सभी उच्च न्यायालयों, उच्चतम न्यायालय, राज्य सरकारों तथा बार एसोसियेशनों से न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में सुझाव आमंत्रित किये। कुछ सुझाव तो समय से प्राप्त हुये किन्तु कुछ सुझावों ने बहुत समय लगाया। कुछ सुझाव[2] तो जून, 1979 में प्राप्त हुये। कुछ न्यायालयों और सरकारों ने अपने मत प्रकट करने से अपने को वंचित रखा। इस सम्बन्ध में जो प्रश्नावली प्रेषित की गई थी वह इस रिपोर्ट की परिशिष्ट[3] के रूप में मुद्रित है।

मार्च, 1978 और प्रस्तुत रिपोर्ट की अवधि के मध्य अग्रेषित रिपोर्ट।

1.5 सुझावों की प्राप्ति में समय लगने वाला था अतः मार्च, 1978 और प्रस्तुत रिपोर्ट की अवधि में आयोग ने अन्य मामलों को लिया और उनके बारे में रिपोर्ट भेजी। इस अवधि में आयोग द्वारा प्रेषित दो महत्वपूर्ण रिपोर्टों में से 77वीं रिपोर्ट विचारण न्यायालयों में देर और बकाया मुकदमों तथा 79वीं रिपोर्ट उच्च न्यायालयों और अन्य अपीलीय न्यायालयों में देर और बकाया मुकदमों के बारे में है।

(1) विधि, न्याय और कम्पनी कार्यों के मंत्री के 1 मार्च, 1978 का पत्र।
(2) विधि आयोग की फाइल में क्रम सं० 8।
(3) परिशिष्ट 2 देखें।

अध्याय 2

विषय का महत्व

उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय का स्थान।

2.1 हमारे संविधान की व्यवस्था के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मामूली सिविल और अपराध मामलों तथा विशेष कानूनों के अन्तर्गत मामलों के अतिरिक्त इन न्यायालयों को जन महत्व के प्रमुख प्रश्नों जिनमें संविधान की व्याख्या भी सम्मिलित है, पर विचार करना होता है। यदि राज्य का कोई कार्य संविधान अथवा विधि का उल्लंघन कर नागरिक के हित को हानि पहुंचाता है तो उसे अधिकार होता है कि वह न्यायालय तक पहुंचें। इन न्यायालयों तक पहुंचने वाले अनेक मामलों-संवैधानिक मसलों का महत्वपूर्ण राज-नीतिक परिणाम होता है। इन न्यायालयों को नागरिक के अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का भार होता है जिसके कारण यह आवश्यक हो जाता है कि इन न्यायालयों का निर्माण करने वाले न्यायाधीशों की क्षमता सम्यक् हो। विधि और संविधान से पूर्णतया मिश हों और अपनी निष्पक्षता और निष्ठा के लिये प्रसिद्ध हों। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि प्रारम्भ में ही नियुक्तियों में अधिकतम सावधानी बरती जाये जिससे सम्यक् व्यक्ति ही न्याया-धीश नियुक्त हो सकें। समय-समय पर यह आलोचना हुई है कि चुनाव उचित नहीं हुये हैं और बाह्य विचारों के वशीभूत होकर चुनाव किये गये हैं। कार्यपालिका द्वारा भी हस्तक्षेप किये जाने की शिकायतें हुई हैं।

शासन की ओर से भी कुछ कम वक्तव्य नहीं दिये गये हैं, कम से कम इति-हास के एक कालखंड में जबकि प्रतिबद्ध न्यायाधीशों की नियुक्ति का तर्क बहुत अधिक जोर दिया गया था। इसके अलावा पक्षपात के आरोप मुख्य मंत्रियों के विरुद्ध ही नहीं लगाये गये हैं अपितु मुख्य न्यायाधीशों के विरुद्ध भी लगाये गये हैं।

स्वतंत्र न्यायपालिका का महत्व।

2.2 स्वतंत्र न्यायपालिका के महत्व को बताना अनावश्यक है। जनतंत्र का मूलभूत सिद्धान्त है कि नागरिक और नागरिक तथा नागरिक और राज्य के बीच विवादों का निर्णय विधि सम्मत होना चाहिये किसी बाह्य विचारों पर आधारित नहीं होना चाहिये। न्याय न्यायिक शपथ के अनुसार बिना भय, पक्षपात, आसक्ति अथवा द्वेष रहित होना चाहिये। नागरिक को विधि के समक्ष समान व्यवहार के प्रति आश्वस्त होना चाहिये। यह आश्वस्ति नागरिक को तभी होगी सामान्यतया यह धारणा बन गयी हो कि जिस फोरम (Forum) से पक्षों के अधिकारों और उत्तरदायित्वों का निर्णय होने वाला है वह न्याय की तुला बराबर रखेगा और अधिकतम निष्पक्षता की भावना से कार्य सम्पादित करेगा। विधि-सम्मत शासन के लिये स्वतंत्र न्यायपालिका का होना अपरिहार्य है। अनुभव बताता है कि न्यायपालिका की आलोचना न्याय-पालिका की स्वतंत्रता को नष्ट करने के पूर्व की जाती है। इस प्रकार की आलोचनायें अथवा आक्रमण इस बात के प्रतीक हैं कि न्यायपालिका पर नियंत्रण नहीं है और अपमान की भावना से प्रेरित होते हैं।

इस प्रकार के आक्रमण कभी कभी न्यायपालिका पर धौंस जमाने के लिये भी किये जाते हैं। एक से एक[1] का कथन है कि

---

1. 2 अगस्त 1977 के गार्जियन गजट जिसे न्यूजीलैण्ड ला जर्नल 304 पर उद्धृत किया गया है।

2—6 M of LJ & CA/ND/79

"(और) हम लोगों की भांति स्वतंत्र जनतंत्र में विधि का मुख्य कर्तव्य सब में से निर्बलों की रक्षा करना है— यह शक्ति चाहे क्राउन (crown) हो, भूमिपति हो, मिलमालिक हो, बहुराष्ट्रीय निगम हो अथवा मजदूर संघ हो। जब भी ये शक्तियां विधि के अथवा न्यायाधीशों के अनौचित्य की बात प्रारम्भ करती हैं तो यह इस बात का चिन्ह नहीं है कि वे कमजोर हैं वरन् उनकी शक्ति इस अवस्था तक विकसित हो गयी है जहां से उनका नियंत्रण प्रारम्भ हो जाना चाहिये क्यों कि समाज के हित में यह आवश्यक है। उन पर अब यह भरोसा न किया जाय कि उस शक्ति का नियंत्रण अब उनकी क्षमता के अन्दर है।"।

गलत नियुक्तियों के दुष्परिणाम।

2.3 न्यायाधीशों की गलत नियुक्ति से न्यायालयों की गलत छवि प्रभावित होती है। इससे लोगों की न्यायालयों के प्रति श्रध्दा में कमी आ जाती है। न्यायालयों के न्याय देने वाले स्वरुप की रक्षा समाज के लिये अत्यधिक आवश्यक है। राज्य के तीन अंगों—व्यवस्थापिका कार्यपालिका, और न्यायापालिका में न्यायपालिका सबसे कमजोर मानी जाती है। इसके पास न तो तलवार और न ही धन की शक्ति होती है।

इसके पास न तो वित्तीय संसाधन हैं न यह स्वयं अपने निर्णयों को लागू करा सकता है। इस कार्य के लिये भी इसे अन्य अंगों पर निर्भर होना पड़ता है। इसके बावजूत भी न्यायालय, विशेषत: वरिष्ठ न्यायालयों ने जनता का आदर और श्रध्दा कहीं अधिक प्राप्त की है। यह इसी लिये है क्यों कि इन्होंने नैतिक बल द्वारा प्रभाव छोड़ा है और इसलिये भी क्यों कि न्यायालयों ने न्याय प्रदान करने वाले की भूमिका किसी प्रकार के विवाद में चाहे वह धनवान और दरिद्र के बीच रहा हो, शक्तिवान और शक्तिहीन के बीच रहा हो, राज्य और नागरिक के बीच रहा हो, बिना किसी भय अथवा पक्षपात के निभायी है। लोगों के न्यायालयों के प्रति विश्वास को किसी प्रकार आघात अथवा समान न्याय प्रदान करने वाली न्यायालयों की छवि में किसी प्रकार का कलंक समाज के कल्याण और सुरक्षा के लिये बड़ा भयावह है। क्योंकि ऐसा होने पर लोग अपने विवादों के हल के लिये अथवा कठिनाइयों को दूर करने के लिये अवैधानिक उपाय अपनाने को बाध्य हो जावेंगे। ऐसा होने पर समाज जीवन का सरल प्रवाह ही अवरुध्द नहीं होगा वरन् शासन का जनतांत्रिक ढंचा ही विनष्ट होने लगेगा। मानव हृदय को अन्य चीजें उतनी नहीं खलती जितना यह भाव कि उसके साथ अन्याय किया गया है। विधि अधिकरणों के अन्याय और गलत कार्यों से राहत दिलाने की अक्षमता का भाव चाहे वह सही हो अथवा धारणा वश ही लोगों के विचारों को खतरनाक रास्तों की ओर ले जाता है और उनको विवश करता है कि वे वैध उपायों के अतिरिक्त अन्य रास्तों की ओर जाय जहां जंगल के न्याय और शारीरिक शक्ति का ही शासन होता है।

अत: यह आवश्यक है कि ऐसा कुछ भी न किया जाय जिससे न्यायालयों की छवि लोगों के हृदयों में धूमिल हो अथवा ऐसे गलत और अवांछनीय व्यक्तियों की न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति की जाय जिससे लोगों की आस्था नष्ट हो।

न्यायपालिका द्वारा अर्जित आस्था।

2.4 न्यायपालिका के लिये लोगों के विश्वास से अधिक मूल्यवान कुछ नहीं है। एक महान अमेरिकी न्यायाधीश की चर्चा करते हुये एक लेखक[1] ने कहा है :—

"वास्तव में वह कौन सी चीज है जिससे न्यायाधीश का निर्माण होता है? महानतम् न्यायाधीश वे हैं जिनमें न्यायाधीश के रूप में अधिकतम आस्था है। और यह आस्था अथवा विश्वास उसी न्यायाधीश को प्राप्त होता है जो अपने सहयोगियों, बार के सदस्यों और उन व्यक्तियों, जिनके मध्य वह सेवा करता है—में विश्वास

1. चार्ल्स ए० होरस्की—"आगस्ट नोबुल हैंड" (1955) 68 हावर्ड ला रिव्यू, 1118, 1119;

स्फूर्त करता है जिससे लोगों में यह धारणा बन जाती है कि प्रत्येक प्रश्न, प्रत्येक तर्क का संतुलन, प्रत्येक मामला (जिसका निर्णय विवेक के आधार पर होना है) निस्पृहता, निर्भीकता और बुध्दिमत्ता (जितनी उसको प्राप्त है) और विधि की अधिकतम समझदारी (जिससे वह स्वयं और मुकदमें के पक्षकार आवध्द हैं) से निर्णीत होगा।" ।

2.5 यदि किसी व्यक्ति की गुणों के कारण नियुक्ति नहीं होती वरन् पक्षपात अथवा अन्य बाह्य के कारणों से होती है तो वह बार का वास्तविक अथवा सहजात से आदर नहीं प्राप्त कर सकता है। कोई भी व्यक्ति जो न्यायालयों के क्रियाकलापों से परिचित है वह इस बात का साक्षी है कि न्यायालय का पीठासीन अधिकारी जिसे बार का वास्तविक और सहज आदर नहीं प्राप्त है उसके न्यायालय की कार्यवाहियों में कठिनाइया उत्पन्न होंगी। न्याय प्रदान करने की व्यवस्था में न्यायाधीशों के व्यक्तित्व पर बहुत कुध निर्भर होता है। चाहे कितने ही कानून और संहितायें प्रारूपित हो यदि वह व्यक्ति जिसका उत्तरदायित्व काननों और संहिताओं को लागू करना है, अयोग्य है तो कानून और संहितायें व्यर्थ हैं। पीठासीन अधिकारी की कार्य कुशलता, ढंग, आस्था, लगाव और विधि का आचार्यत्व न्यायालयों की कार्यक्षमता में भिन्नता पैदा करती है। बार के सदस्यों की जानकारी को यह सामान्य सी बात है कि कोई मुकदमा किसी न्यायाधीश के सामने दो घंटे मात्र में निर्णीत हो जाता है जब कि वही मुकदमा दूसरे न्यायाधीश के सामने दो दिन में भी निर्णीत नहीं होता है। बहुत से मुकदमों में वकील पूर्व न्यायाधीश से अधिक संतुष्टि का अनुभव करता है। यह मानना भी वही नहीं होगा कि न्यायाधीश जो कम समय लेते हैं वे उतावले होते हैं अथवा वे वकीलों को अपना पक्ष प्रश्न प्रस्तुत नहीं करने देते अथवा आवश्यक तथ्यों को सामने नहीं आने देते। अनावश्यक जल्द बाजी अथवा मुकदमें को जल्द निपटाने के अधैर्य को ध्यान में रखते हुये भी।

बार (Bar) द्वारा आदर।

आयोग ध्यान दिलाता चाहता है कि ज्यादा तर किसी मुकदमें की सुनवाई के लिये ली जाने वाली अवधि न्यायाधीश की तैयारी पर, विधि और तथ्यों के बिन्दुओं को जल्द ग्रहण करनी की योग्यता पर और तथ्यों और विधि सिध्दांतों के जंजाल में से महत्वपूर्ण प्रश्न पर पहुंचने की क्षमता पर निर्भर करता है।

2.6 इसी प्रसंग में इस आयोग की 79वीं रिपोर्ट[1] में हम लोगों द्वारा कही गई बात को ही दुहराना उपयुक्त होगा——

79वीं रिपोर्ट में कथन।

"3.15 हम इस मत के भी हैं कि उच्च न्यायालय की पीठों के लिये योग्यतम उपलब्ध व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिये। इसमें सर्वोपरि विचार व्यक्ति के गुण होना चाहिये। अन्य विचार को छोड़ कर केवल एक ही विचार होना चाहिये कि सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध व्यक्ति ही पद के लिये नियुक्त हों। अनुभव बताता है कि गलत नियुक्तियों का प्रभाव न्यायालयों की छवि को ही प्रभावित नहीं करता वरन् मुकदमें के पक्षकारों, बार के सदस्यों और जन साधारण में उच्च न्यायालय के प्रति आस्था और विश्वास भी समाप्त कर देता है। गलत नियुक्ति से मुकदमें के निर्णय और परिमाण पर भी प्रभाव पड़ता है। ऐसे मामले भी सुविदित है जिनमें एक व्यक्ति की गलत नियुक्ति के कारण "सक्षम व्यक्तियों ने मुख्य न्यायाधीश के आश्वासनों के बावजूद पीठासीन होने से इन्कार कर दिया है।

1. 79 वीं रिपोर्ट, अनुच्छेद 3.15 और 3.16।

3.16 उपयुक्त क्षमता वाले व्यक्तियों को पीठासीन करने के लिये सेवा की शर्तों को भी उन्नत बनाना चाहिये जिससे वे आकर्षित हो सकें। ये शर्तें पेंशन और अन्य लाभों से भी सम्बन्धित हो सकती हैं जिसके वे अवकाश प्राप्ति के पश्चात् अधिकारी होंगे। यह बात सही है कि न्यायाधीशों का वेतनमान देश के उच्चस्तर के वेतनमान के सामान्य प्रतिमान से पूर्णतया अलग नहीं हो सकता है फिर भी यह ध्यान में रखना होगा कि बार के उज्जवल और योग्य सदस्य व्यवसाय में रहकर अधिक उपार्जन कर सकते हैं। कुछ लोगों की दृष्टि में न्यायाधीश के पद की गरिमा अवश्य है किन्तु यह गरिमा धीरे-धीरे समयान्त मूल्यों की निरन्तर बढ़ोतरी और व्यावसायिक आय और न्यायाधीशों के वेतन में निरन्तर बढ़ती असमानता के साथ कम होती जा रही है। हमको इस तथ्य का भी ध्यान रखना चाहिये कि हाल में कुछ ऐसे पग उठाये गये हैं जिससे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को बिना किराया आवास और वाहन भत्ता देकर सेवा की शर्तों में कुछ सुधार किया गया है। फिर भी कर सम्बन्धी कानूनों का यदि ध्यान करें तो ये पग जो उठाये गये हैं पर्याप्त सुविधायें नहीं देते हैं।"।

पूर्व विधि आयोग का विचार :

2.7 गुणों के आधार के अतिरिक्त अन्य विचारों के आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करते हुये विधि आयोग ने जिसके अध्यक्ष श्री एम० सी० सीतलवाड थे, अपनी 14वीं रिपोर्ट[1] में कहा है :—

"गुण के आधार के अतिरिक्त अन्य विचारों से प्रेरित होकर व्यक्ति के चुनाव का दूरगामी प्रभाव होता है। स्वाभाविक है कि ऐसा व्यक्ति न्याय के प्रशासन को चलाने के लिये बार के सदस्यों से आवश्यक सहयोग नहीं प्राप्त कर सकेगा क्योंकि बार के सदस्य उसकी क्षमता से पूर्ण परिचित होंगे। न तो ऐसा न्यायाधीश अपने अन्दर ही इतना विश्वास प्राप्त कर सकेगा जिसकी उसे अपने कर्तव्यों के कुशलता पूर्वक निर्वाह करने के लिये आवश्यकता है। ये परिस्थितियां उस न्यायाधीश के कार्य के गुण और परिमाण को बुरी तरह प्रभावित करेंगी। यह सुनिश्चित है कि न्यायिक स्तर को नीचे ले जाने से न्याय के प्रशासन की कुशलता बुरी तरह प्रभावित होगी। किन्हीं क्षेत्रों में यह कहा गया है कि न्यायाधीशों की संख्या जितनी अधिक होगी कार्य के उत्पादन का अनुपात उतना ही नीचे होगा। हमारा मत है कि इस प्रकार का साधारणीकरण किसी स्वीकार्य तथ्य पर आधारित नहीं है। किन्तु ऐसा लगता है कि वास्तव में कम उत्पादन के कारण न्यायाधीश नहीं वरन् "ऐसे व्यक्तियों की नियुक्तियां हैं जो असंतोष जनक हैं। कोई भी व्यक्ति जिसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में होती है चाहे वह बार से चुना जाय अथवा सेवाओं से लिया जाय वह व्यक्ति उस पद को ग्रहण करने में उपयुक्तम व्यक्ति होना चाहिये। यदि इस मूल सिध्दांत की उपेक्षा नियुक्तियों में की जाती है तो यह स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया गया कार्य उचित स्तर का नहीं होगा। अतः यदि किन्हीं मामलों में अनुपात के हिसाब से कम उत्पादन हुआ है, यद्यपि वहां न्यायाधीशों की संख्या अधिक है, तो कार्य में गिरावट का स्पष्ट कारण योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति न होने से उत्पन्न परिस्थितियां हैं। उच्च न्यायालय के पीठों पर नियुक्तियों का स्पष्ट प्रभाव कार्यों के निबटारों पर और कार्य के बकाया पर पड़ता है।"।

गलत नियुक्ति का प्रभाव :

2.8 गलत और अनुचित नियुक्तियों का प्रभाव कुछ काल के लिये ही नहीं होता अपितु इसका दुष्प्रभाव दूरगामी होता है। बहुधा यह भी होता है कि उपयुक्त व्यक्ति भी बाद में नियुक्ति के लिये प्रस्ताव आने पर अस्वीकार कर देता है। अतः यह अत्यावश्यक है कि जहां तक संभव हो सके पक्षपात् के अवसरों को समाप्त कर दिया जाय और अन्य छिद्रों को भी बंद कर दिया जाय जिससे कि भविष्य में उपयुक्त क्षमता वाले व्यक्तियों की नियुक्ति हो सके और केवल गुणों का ही विचार सर्वोपरि हो।

1. 14वीं रिपोर्ट, भाग 1, पृष्ठ 70 अनुच्छेद 9।

अध्याय 3

अन्य अनेक देशों में अवस्था

3.1 अन्य देशों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रावधान कुछ रुचिकर तथ्य सामने लाते हैं। प्रत्येक देश में इस सम्बन्ध में व्यवस्था का अध्ययन करना कठिन होगा किन्तु बड़े देशों का विचार किया जा सकता है। विश्लेषण

3.2 अनेक देशों में वहां की संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत वरिष्ठ न्यायालयों के लिये न्यायाधीशों की नियुक्ति वहां की — सरकारें, राज्य के प्रमुख के नाम पर करती हैं और कहां किसी अन्य व्यक्ति अथवा प्राधिकरण से परामर्श का विशेष प्रावधान नहीं है। इस श्रेणी में — यदि राष्ट्र कुल के कुछ प्रमुख देशों का ही उल्लेख करें तो आस्ट्रेलिया[1-2] कनाडा और यूनाइटेड किंगडम हैं। राज्य के प्रमुख द्वारा नियुक्ति।

3.3 यूनाइटेड किंगडम में सभी वरिष्ट न्यायाधीशों अर्थात् हाउस आफ लार्डस् के न्यायाधीशों (लार्डस् आफ अपील, जो हाउस आफ लार्ड में स्थान ग्रहण करते हैं), कोर्ट आफ अपील के न्यायाधीशों, उच्च न्यायालय की नियुक्तियां उपयुक्त मंत्री की सलाह पर सम्राट द्वारा की जाती हैं। प्रधान मंत्री ला लार्डस्, लार्ड जस्टिस आफ अपील लार्ड चीफ जस्टिस, मास्टर आफ रोल्स एवं प्रेसीडेन्ट आफ फेमिली डिवीजन नामांकित करता है[3] यह सामान्यतया माना जाता है कि प्रधान मंत्री इस मामले में लार्डचांसलर द्वारा निर्देशित होता है[4]। यूनाइटेड किंगडम।

लार्ड चांसलर, उच्च न्यायालय के साधारण (अवर) न्यायाधीशों, सरकिट न्यायाधीशों, रिकार्डर और उच्च न्यायालय के डेपुटी तथा सरकिट कोर्ट के न्यायाधीशों[4] की नियुक्ति करता है।

3.4 आस्ट्रेलिया में[5] उच्च न्यायालय तथा पार्लमिेन्ट द्वारा सृष्ट अन्य न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर जनरल इन कौंसिल द्वारा की जाती है और उन्हें पार्लमिन्ट के दोनों सदन की सभा में अयोग्यता अथवा दुर्व्यवहार के आधार पर गवर्नर जनरल इन कौंसिल की प्रार्थना पर हटाये जाने की प्रार्थना के से ही किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया।

3.5 आस्ट्रेलिया के प्रत्येक राज्य में एक सर्वोच्च न्यायालय और अनेक नामों से मातहत अदालतों की एक प्रणाली है। एक सुविख्यात लेखक[6] ने न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया है — आस्ट्रेलिया—राज्य न्यायालय।

"सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों की भांति ही कार्य पालकों[7] द्वारा नियुक्त होते हैं किन्तु वे सम्बन्धित संसद् द्वारा हटाये जा सकते हैं— किसी भी महत्वपूर्ण दल ने निर्वाचित न्यायाधीशों अथवा मजिस्ट्रेटों की बात नहीं रखी हैं।"

---

1. धारा 72 कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया कांस्टीट्यूशन ऐक्ट, 1900।
2. ऊपर आस्ट्रेलिया के सम्बन्ध में अनुच्छेद 3.6 भी देखें।
3. जैकसन, मशीनरी आफ जस्टिस इन इंगलैंड (1977) पृष्ठ 459-460।
4. जैकसन, मशीनरी आफ जस्टिस इन इंगलैंड (1977) पृष्ठ 460।
5. कामन वेल्थ आफ आस्ट्रेलिया कांस्टीट्यूशन ऐक्ट, 1900, धारा 72।
6. ज्याफ्रे सावर, आस्ट्रेलियन गवर्नमेन्ट टुडे—पंचम संस्करण संशोधित (195) पृष्ठ 42।
7. बहुवचन पर ध्यान दें।

आस्ट्रेलिया के राज्य न्यायालयों के सम्बन्ध में यह कहा गया है[1]।

"राज्य न्यायालय राज्यों की विधि द्वारा सृष्ट होते हैं, उनका अस्तित्व राज्यों की विधि पर ही निर्भर है, वे ही कानून न्यायालयों की रचना और संगठन निश्चित करते हैं जिसके द्वारा इनके अधिकार और न्यायाधिकार का प्रयोग होता है।"

आस्ट्रेलिया सर गारफील्ड बारविक के कानून।

3.6 हाल में ही सर गारफील्ड बारविक आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायाधीश, ने निम्नलिखित सुझाव[2] न्यायपालिका में चुनाव के ढंग तथा कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका की नियुक्ति पर अवरोध लगाने की आवश्यकता के लिये दिये हैं:—

"मेरे विचार से इस जाति और इसके संस्थाओं के विकास का वह काल आ गया है जब कि कार्यपालिका के शासन का क्षेत्र बहुत कुछ सीमित कर दिया जाना चाहिये। शासन का न्यायाधीशों की नियुक्ति में अधिकार छोड़ने की बात में आना-कानी तो समझ में आती है। फिर भी मेरा विचार है कि न्याय के शासन का दूर गामी विचारकों को इस विशेषाधिकार के प्रयोग को अवरुद्ध करने की आवश्यकता है। मैं साहस पूर्वक यह सुझाव देता हूं कि आस्ट्रेलिया की सभी प्रणालियों में जहां पर न्यायिक पद के लिये कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति की जा सकती है वहां न्यायिक आयोग होना चाहिये—नाम महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु यह निकाय ऐसा होना चाहिये जो कार्यपालिका सरकार को सलाह देने के लिये उत्तरदायी हो उन व्यक्तियों के नामों के बारे में जो प्रशिक्षण, ज्ञान, अनुभव, चरित्र और स्वभाव के कारण विचारणीय पद के लिये नियुक्त होने योग्य हों। ऐसे निकाय के सदस्यों में न्यायाधीश, कार्यरत वकील, "शिक्षा में रत वकील-और ऐसे भी व्यक्ति होने चाहिये जो नियुक्ति योग्य व्यक्तियों के बारे में जानकारी रखते हों। इस प्रकार का निकाय संभावित नियुक्ति योग्य व्यक्तियों के बारे में अधिक जानकारी रखेगा बनिस्बत एक राज्य मंत्री के कुछ लोग यह पसन्द करेंगे। कि ऐसे निकाय द्वारा नियुक्तियां ही की जांय किन्तु कुछ लोग यह चाहेंगे कि यह निकाय केवल संस्तुति ही करे और कुछ ऐसे भी व्यक्ति होंगे जो यह चाहेंगे कि यह निकाय नामों का संक्षिप्त पैनल ही प्रस्तुत करें जिसके बाहर कार्यपालिका सरकार न जा सके अथवा यदि वह बाहर ही जाय तो उसे जन सामान्य को कारण बताना पड़े।

"मैं यहां अपनी पसन्द बताने के लिये नहीं हूं। किन्तु इतना कहना ही पर्याप्त है कि अब वह समय आ गया है जब कार्यपालिका को न्यायिक नियुक्तियों के चयन में कुछ नियंत्रित किया जाना चाहिये और कार्यपालिका को भी इसे स्वीकार करना चाहिये।"

कनाडा।

3.7 कनाडा में[3] वरिष्ट न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है और वे तब तक पदासीन रहते हैं जब तक उनका व्यवहार ठीक है। किन्तु वह गवर्नर जनरल द्वारा सीनेट और हाउस आफ कामंस को सम्बोधित करने के पश्चात् हटाये जा सकते हैं।[3] एक कानूनी प्रावधान[4] के अनुसार "सर्वोच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधीश, (जिसे कनाडा के मुख्य न्यायाधीश के नाम से सम्बोधित किया जायेगा) और आठ सहायक न्यायाधीशों का होगा जो गवर्नर जनरल इन कौंसिल द्वारा लेटर्स पेटेंट जिस पर ग्रेट सील होगी द्वारा नियुक्त किये जायेंगे"।

1. लक्सुरियर वि० कोनन (1929) 42 सी० एल० आर० 481, 495–496।
2. सर गारफील्ड बारविक "दि स्टेट आफ आस्ट्रेलियन ज्यूडिकेचर" (जुलाई, 1977) भाग 51 आस्ट्रेलियन ला जर्नल 480, 494 (19वीं आस्ट्रेलियन लीगल कन्वेंशन, सिडनी)।
3. धारा 96 से 99 तक ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट 1867।
4. रिवासण्ड स्टेट्यूट्स आफ कनाडा (1970) अध्याय एस–19, धारा 4; गाल: द कनाडियन लीगल सिस्टम (1977) पृष्ठ 107।

3.8 संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है किन्तु इसकी सीनेट द्वारा अनुमोदन की आवश्यकता होती है।[1] यू०एस० ए०-उच्चतम न्यायालय।

3.9 संयुक्त राज्य अमेरिका के कोर्ट्स आफ अपील का जहां तक सम्बन्ध है संविधान उसी प्रणाली[1] की आवश्यक बताता है। अभी हाल में राष्ट्रपति की आज्ञा से "सरकिट जजेज नामिनेशन कमीशन" की स्थापना राष्ट्रपति को संयुक्त राज्य अमेरिका के कोर्ट्स आफ अपील, में नियुक्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ और योग्यतम व्यक्तियों के नाम भेजने के लिये की गई है। आज्ञा के विस्तृत और सुसंगत प्रावधान परिशिष्ट[2] में प्राप्त होंगे। यू० एस० ए० —कोर्ट आफ अपील।

3.10 जहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों के न्यायालयों के न्यायाधीशों का सम्बन्ध है अभी हाल के अध्ययन द्वारा स्थिति पर प्रकाश डाला गया है :[3] यू० एस० ए०—राज्य न्यायालय।

"राज्यों में न्यायिक चयन

राज्यों में न्यायाधीशों का चयन, निर्वाचन, नियुक्तियां अथवा दोनों ही सम्मिलित प्रणालियों से किया जाता है। न्यायाधीशों के निर्वाचन की प्रथा जैक्सनीयन जनतंत्र की एक देन है। 1832 के पूर्व केवल एक राज्य ने अपने सभी न्यायाधीशों का निर्वाचन किया लेकिन 1846 से 1959 तक की अवधि में संघ में प्रविष्ट किए गए प्रत्येक राज्य ने सभी न्यायाधीशों अथवा अधिकांश न्यायाधीशों के निर्वाचन का प्रावधान किया था। 1971 में निर्वाचन ही न्यायायिक चुनाव का 27 राज्यों में प्रमुख तरीका था (14 राज्यों में दलीय आधार पर निर्वाचन और 13 राज्यों में निर्दलीय आधार पर निर्वाचन), 4 राज्यों में व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन होता था और नौ राज्यों में कार्यपालिका नियुक्तियां करती थी तथा अन्य ग्यारह राज्यों में मेरिट प्लान था।

"मेरिट प्लान, जिसे मिसौरी प्लान, भी कहा जाता था निर्वाचन और चुनाव द्वारा नियुक्तियों में सामंजस्य का नाम था। इस प्रणाली के अन्तर्गत अनेक आयोगों की स्थापना न्यायाधीशों के नामांकन के लिए किया जाता है। अपीलीय आयोग में सात सदस्य होते हैं जिनमें राज्य के मुख्य न्यायाधीश, राज्य बार एसोसियेशन द्वारा निर्वाचित तीन वकील और गवर्नर द्वारा नियुक्त तीन सदस्य होते हैं। इनमें तीन में कोई भी सरकारी अधिकारी अथवा राजनीतिक दल का पदाधिकारी नहीं हो सकता है। केवल मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर इन सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष के लिए होता है। कार्यकाल इस प्रकार समाप्त होता है कि हर दो सदस्य दो वर्षों पश्चात् अवकाश ग्रहण करता जाता है। आयोग प्रत्येक रिक्त स्थान के लिए तीन नामांकन करता है उनमें से गवर्नर को न्यायाधीश के कार्यालय के एक वर्ष पूर्ण होने पर उसका नाम निर्वाचन के लिए भेज दिया जाता है कि उसका नाम पद के लिए रखा जाय अथवा नहीं। यदि निर्वाचित होता है तो वह अपीलीय जज के रूप में पूरे कार्यकाल—12 वर्षों के लिए और विचारण न्यायाधीश के रूप में 6 वर्ष कार्य करता है। इस कार्यावधि की समाप्ति पर वह पुनः निर्वाचन के लिए योग्य होता है। मिसौरी प्लान, गुणों के आधार पर ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है? यह प्रश्न राजनीतिक है। यद्यपि यह राजनीतिक क्षेत्र बार संघटनों का ही होता है, जिसमें साधारण नागरिक की कोई आवाज नहीं होती है।

---

1. कांस्टीट्यूशन आफ यू० एस० ए० आर्टिकिल 2 धारा 2 एवं आर्टिकल 3 धारा 1।
2. परिशिष्ट 1 देखें।
3. मरफी एण्ड प्रिटचेट: कोर्ट्स, जजेज एण्ड पालिटिक्स (1974) पृष्ठ 163।

यू० एस० एस० आर० 13.11: रूस में, 1977 का संविधान निम्नलिखित उपबन्ध करता है :—

"**अनुच्छेद 151**– यू० एस० एस० आर० के संविधान के अनुसार न्याय न्यायालयों द्वारा ही किया जाता है।

"यू० एस० एस० आर० में निम्नलिखित न्यायालय हैं—यू० एस० एस० आर० का उच्चतम न्यायालय, यूनियन रिपब्लिक्स के उच्चतम न्यायालय, स्वायतशासी रिपब्लिक के उच्चतम न्यायालय, क्षेत्रीय, प्रादेशिक और नगर न्यायालय, स्वायतशासी प्रदेश के न्यायालय, स्वायतशासी क्षेत्रों के न्यायालय, जिला जन न्यायालय और सशत्र बलों के मिलीटरी अधिकरण।

"अनुच्छेद 152—यू० एस० एस० आर० के सभी न्यायालयों का निर्माण, न्यायाधीशों और जन असेसरों की निर्वचनीयता के सिद्धान्त पर निर्भर है।

जिला (नगर) के जन न्यायालयों के जन न्यायाधीशों का निर्वाचन 5 वर्षों के लिए जिला (नगर) के नागरिकों द्वारा समान, सीधे और गुप्त मतदान द्वारा होगा। जिला (नगर) जन न्यायालयों के असेसरों का निर्वाचन ढाई वर्षों के लिए नागरिकों द्वारा अपने कार्य अथवा निवास स्थान की सभाओं में हाथ उठाकर किया जाएगा।

सम्बद्ध सोवियत के पीपुल्स डिपुटीज द्वारा उच्चतर न्यायालयों का निर्वाचन पांच वर्षों के लिए किया जाएगा[1]

"मिलिटरी अधिकरणों के न्यायाधीशों का निर्वाचन यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रिसीडियम द्वारा पांच वर्षों के लिए किया जाता है। जनता असेसरों का निर्वाचन की सैनिकें सभा में ढाई वर्षों के लिए किया जाता है।

"न्यायाधीश और असेसर अपने निर्वाचकों अथवा निर्वाचन करने वाले निकायों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह अपने कार्य का लेखा जोखा भी उन्हें ही देते हैं और विहित ढंग से इन्हीं के द्वारा हटाये अथवा वापस बुलाये जा सकते हैं।

"**अनुच्छेद 153**—यू० एस० एस० आर० का उच्चतम न्यायालय यहां का सर्वोच्च न्यायिक निकाय है। यह विधि द्वारा यू० एस० एस० आर० और यूनियन रिपब्लिक्स में स्थापित न्यायालयों द्वारा न्याय प्रशासन का पर्यवेक्षण करता है।

"यू० एस० एम० आर० के सुप्रीम से वियत द्वारा यहां के उच्चतम न्यायालय का निर्वाचन होता है जिसमें चेयरमैन, वाइस चेयरमैन, सदस्यगण और जन असेसर होते हैं। यूनियन रिपब्लिस के उच्चतम न्यायालयों के चेयरमैन, यू० एस० एस० आर० के न्यायालय के पदेन सदस्य होते हैं।

"यू० एस० एस० आर० के उच्चतम न्यायालय का संघटन और कार्य प्रणाली उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी विधि में परिभाषित है।

"**अनुच्छेद 154**—सभी न्यायालयों में सिविल और आपराधिक मामलों की सुनवाई कांसिजियल है। प्राथमिक न्यायालय में मामले जन असेसरों की भागीदारी से सुने जाते हैं। न्याय के प्रकाशन में जन असेसरों को न्यायाधीशों के समान अधिकार होते हैं।

"**अनुच्छेद 155**—न्यायाधीश और जन असेसर पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं—केवल कानून के अन्तर्गत होते हैं।

"**अनुच्छेद 156**—यू० एस० एस० आर० में विधि का प्रकाशन सभी व्यक्तियों की न्याय और कानून के समक्ष समानता के आधार पर चलता है।

1. सोवियत के पीपुल्स डिपुटीज के लिये अनुच्छेद 89 देखें।

3.12 फ्रांस में राज्य के शीर्ष व्यक्ति द्वारा उच्चशक्ति प्राप्त निकाय की सलाह पर उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति किये जाने का प्रावधान है। फ्रांस :

"न्यायिक प्राधिकरण" शीर्षक के अन्तर्गत कांस्टीट्यूशन आफ फिफ्थ फ्रेंच रिपब्लिक (1958) में दिए प्रावधान (जहां तक तात्विक हैं) नीचे दिये जाते है।[1]

"**अनुच्छेद** 64—न्यायिक प्राधिकरण की स्वतंत्रता का प्रत्याभूतिदाता गणतंत्र का राष्ट्रपति होगा। हाई कौंसिल आफ दि जुडिसियरी इसकी सहायता करेगी।

"**अनुच्छेद** 65—हाई कौंसिल आफ दि जुडिसियरी, की अध्यक्षता गणतंत्र का राष्ट्रपति करेगा। न्याय मंत्री इसका पदेन उपाध्यक्ष होगा। वह राष्ट्रपति के स्थान पर अध्यक्षता कर सकेगा।

"इसके अतिरिक्त हाई कौंसिल, में राष्ट्रपति नौ अन्य सदस्यों को सदस्य नियुक्त करेगा जो उन शर्तों के अनुसार होंगे जो राज्य के अंग द्वारा सृष्ट विधि द्वारा सुनिश्चित किये जाएंगे।

"हाई कौंसिल आफ दि जुडिसियरी कोर्ट आफ काजेशन, (अपील का उच्चतम न्यायालय) और फर्स्ट प्रेसीडेन्ट्स आफ कोर्ट्स आफ अपील, के लिए न्यायाधीशों का नामांकन प्रस्तुत करेगी। राज्य के अंगी द्वारा सृष्ट विधि ये सुनिश्चित शर्तों के अन्तर्गत न्याय मंत्री के अन्य न्यायाधीशों को नामांकन सम्बन्धी प्रस्तावों पर अपनी सलाह देगी। क्षमा प्रदान करने के प्रश्नों पर भी इससे विधि द्वारा निश्चित शर्तों के अधीन राय ली जावेगी।

"न्यायाधीशों के लिये हाई कौंसिल आफ दि जुडिसियरी अनुशासन समिति का भी कार्य करेगी। ऐसे मामलों में इसकी अध्यक्षता कोर्ट आफ काजेशन के प्रथम अध्यक्ष करेंगे"।[3]

3.13 पश्चिम जर्मनी में वहां के संविधान के अन्तर्गत हमें दो प्रकार की प्रणालियां न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्राप्त होती हैं।[3] जहां तक फेडेरल कांस्टीट्यूशनल कोर्ट का सम्बन्ध है, यह साधारण अपील का न्यायालय नहीं है वरन यह केवल संविधान की व्याख्या और विधि की वैधता के प्रश्नों पर ही विचार करता है। संविधान निम्न प्रावधान करता है :— पश्चिमी जर्मनी।

"94(1) फेडेरल कांस्टीट्यूशनल कोर्ट संघ न्यायाधीशों एवं सदस्यों द्वारा निर्मित होगा। फेडेरल कांस्टीट्यूशनल कोर्ट के आधे सदस्य बंडेस्टैग और आधे सदस्य बंडेस्रैट द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि उनका सम्बन्ध बंडेस्टैग या बंडेस्रैट संघ शासन अथवा देश के अन्य इसी प्रकार के निकायों से हो।

फेडेरल कांस्टीट्यूशनल कोर्ट के अतिरिक्त जर्मनी का उच्चतम न्यायालय भी है जो संघ विधि की सुरक्षा और एक रूपता लाने के लिये स्थापित है। यह उन मामलों में निर्णय करता है जिनका न्याय के प्रशासन में एक रूपता बनाये रखने के लिये उच्च फेडरल न्यायालय के लिये आधार भूत महत्व है।

इस न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये संवैधानिक प्रावधान निम्नस्थ है[4]—

"उच्चतम फेडरल कोर्ट के न्यायाधीशों का चुनाव फेडरल न्याय मंत्री और न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये समिति (जिसके सदस्य लैंड मिनिस्टर आफ जस्टिस और के बंडेस्टैग से चुने गये समान संख्या में सदस्य होंगे)" करेगी

1. कांस्टीट्यूशन आफ फिफ्थ फ्रेंच रिपब्लिक (1958) शीर्षक 8, अनुच्छेद 64 और 65।
2. कांस्टीड्यूशन आफ इटली, अनुच्छेद 104-105 भी देखिए।
3. बेसिक ला आफ जर्मन फेडेरल रिपब्लिक, अनुच्छेद 94 (1)।
4. कांस्टीट्यूशन आफ जर्मन फेडेरल रिपब्लिक का अनुच्छेद 95 (3)।

जापान।

3.14 जापान में निम्न भांति व्यवस्था है:[1] जापान में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति मंत्री परिषद् करती है। मुख्य न्यायमूर्ति (जिसे संविधान के अन्तर्गत मुख्य न्यायाधीश कहा गया है) मंत्रि परिषद् द्वारा नामांकन के पश्चात् सम्राट द्वारा नियुक्त होता है।

आगे भी संविधान में प्रदत्त है---

"उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति उनकी प्रथम नियुक्ति के पश्चात् होने वाले हाउस आफ रिप्रेसेन्टेटिव के सदस्यों के सामान्य निर्वाचन में जनता द्वारा पुनर्वीक्षित होगा। इसका फिर से पुनर्वीक्षण सदस्यों के हाउस आफ रिप्रेसेंटेटिव के लिये सामान्य निर्वाचन के समय दस वर्षों के व्यतीत होने पर होगा। और इसी प्रकार इसके पश्चात् होता रहेगा।

"उपर्युक्त अनुच्छेद में वर्णित मामलों में यदि मतदाताओं का बहुमत यह चाहता है कि "न्यायाधीश हटा दिया जाय तो उसे हटा दिया जायेगा।"[2]

कुछ राष्ट्र कुल देशों में न्यायिक सेवा आयोग।

3.15 कुछ देशों के संविधान में जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से अभी नयी स्वतंत्रता प्राप्त की है रुचिकर प्रावधान हैं। ये देश पहले ब्रिटिश साम्राज्य के गुलाम देश थे। इन देशों के संविधान में न्यायिक सेवा आयोग की व्यवस्था है। इस आयोग का कार्य सामान्यतया उच्चतर न्यायाधीशों की नियुक्ति में सलाह देना (मुख्य न्यायामूर्ति और कोर्ट आफ अपील के प्रधान के अतिरिक्त) और कनिष्ठ न्यायाधीशों के ऊपर नियंत्रण रखना है।

मलावी का संविधान[3-4] एक दृष्टान्त है सुसंगत प्रावधान का पाठ इस तरह है :---

"63. (1) मुख्य न्यायामूर्ति की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जावेगी।

"(2) राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायिक सेवा आयोग के परामर्श से की जावेगी।

"67. (1) मलावी के लिए एक सुप्रीम कोर्ट आफ अपील होगी। संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत इसका अधिकार और न्याय क्षेत्र संविधान अथवा अन्य किसी विधि द्वारा प्रदत्त होगा।

(2) सुप्रीम कोर्ट आफ अपील के न्यायमूर्तिगण में निम्नस्थ व्यक्ति होंगे :---

(क) मुख्य न्यायमूर्ति---"अध्यक्ष,"[5]

(ख) अपील न्यायाधीशों की वह संख्या जो संसद् द्वारा विहित की जाय

(ग) उस समय पदासीन उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीश।

"71. एक न्यायिक सेवा आयोग होगा जिसमें

(क) मुख्य न्यायमूर्ति---अध्यक्ष होगा

(ख) लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर नियुक्ति अन्य कोई आयोग का सदस्य, और

(ग) मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा जस्टिस आफ अपील अथवा न्यायाधीश में से आविहित व्यक्ति।"

---

1. कांस्टीट्यूशन आफ जापान का अनुच्छेद 6 और 79।
2. कांस्टीट्यूशन आफ जापान अनुच्छेद 72 (2), (3)।
3. कांस्टीट्यूशन आफ मलावी---अनुच्छेद 63, 67 एवं 71।
4. कांस्टीट्यूशन आफ यूगांडा अनुच्छेद 90, 91, 97; जामाइका, धारा 11; कीनिया धारा 174(1); मलेशिया अनुच्छेद 134; सीयरा लोने धारा 76 (1), (2), 80 (1), (2) एवं 85; ट्रिनीडाड धारा 75 और 79।
5. 1966 के कांस्टीट्यूशन आफ मलावी (संशोधन) अधिनियम सं० 39 द्वारा हटाया गया।

3.16 न्यायिक सेवा आयोग का सबसे पहला उदाहरण सीलोन के संविधान में प्राप्त है। (अब श्री लंका)[1] श्री लंका (सीलोन)।

उस संविधान के अनुच्छेद 52 और 54 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति अन्य और न्यायाधीशों और असाइज (Assize) के आयुक्तों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जानी थी किन्तु अन्य न्यायिक पदाधिकारियों की नियुक्ति न्यायिक सेवा आयोग द्वारा होती थी जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश और एक अन्य व्यक्ति होते थे।

3.17 कभी कभी संविधान में इस बात की व्यवस्था होती है कि राज्य का प्रमुख ऐसे किसी निकाय से परामर्श करें जिसमें न्यायपालिका के लोग ही पूरी तौर पर न हों और जो व्यवस्थापिका का अंग भी न हो।[2] अन्य निकायों से परामर्श।

3.18 उपर्युक्त चर्चा में दिए तत्व की मीमांसा करना उपादेय होगा। विभिन्न प्रावधानों को निम्नस्थ श्रेणियों में रखा जा सकता है :— विश्लेषण।

(क) न्यायाधीशों की नियुक्ति के पूर्व परामर्श का कोई विशेष प्रावधान नहीं है,

(ख) न्यायाधीशों की नियुक्ति के पूर्व मुख्य न्यायाधीश अथवा न्यायपालिका के अन्य सदस्यों से परामर्श का प्रावधान,

(ग) न्यायिक कौंसिल, न्यायिक सेवा आयोग अथवा अन्य इसी प्रकार के निकाय से परामर्श का प्रावधान,

(घ) व्यवस्थापिका अथवा उसके द्वारा निर्वाचित किसी निकाय से परामर्श अथवा व्यवस्थापिका का अनुमोदन, प्राप्त करने का प्रावधान,

(ङ) उपर्युक्त किसी श्रेणियों के अन्तर्गत न आने वाले किसी अभिकरण से परामर्श अथवा अनुमोदन प्राप्त करने का प्रावधान, और

(च) न्यायाधीशों का निर्वाचन।

---

1. अनुच्छेद 52 (1), 53, 54, 55, 56 सीलोन कांस्टीट्यूशन आर्डर इन कौंसिल प्यालसी, कांस्टीट्यूशन आफ नेशनस, द्वितीय संस्करण (1956) भाग 1 पृष्ठ 464 और 465।
2. कांस्टीट्यूशन आफ नेपाल : अनुच्छेद 69, 23 (1) और 23 (2)।

अध्याय 4

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1. गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 (भारत सरकार अधिनियम, 1935)

गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट 1935।

1.1 गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 में फेडरल कोर्ट के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के पूर्व किसी भी व्यक्ति अथवा निकाय से परामर्श किए जाने का सुनिश्चित प्रावधान नहीं था। अधिनियम की धारा 200 की उपधारा (2) और (3) जिनका फेडरल कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति से सम्बन्ध था निम्न प्रकार है।[1]

"(2) फेडरल कोर्ट का प्रत्येक न्यायाधीश सम्राट द्वारा उसके हस्ताक्षर संयुक्त अधिपत्र द्वारा नियुक्त होगा और वह उस पद पर पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त होने तक रहेगा:

परन्तु—

(क) एक न्यायाधीश गवर्नरजनरल को सम्बोधित अपने हस्तलेख में लिखित, त्याग पत्र द्वारा अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है,

(ख) सम्राट के हस्ताक्षर से युक्त अधिपत्र द्वारा किसी एक न्यायाधीश को दुर्व्यवहार अथवा शारीरिक या मानसिक शैथिल्य के आधार पर उसके पद से हटाया जा सकेगा, यदि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति उसे सम्राट द्वारा निर्देश किये जाने पर रिपोर्ट देती है कि न्यायाधीश को इस प्रकार के किसी आधार पर हटाया जा सकता है।

(3) कोई भी व्यक्ति फेडरल कोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त किये जाने का अर्ह नहीं होगा जब तक कि वह

(क) ब्रिटिश इंडिया में अथवा संघ राज्य में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश कम से कम पांच वर्षों तक न रह चुका हो, अथवा

(ख) इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का कम से कम दस वर्षों की प्रतिष्ठा का बैरिस्टर अथवा स्काटलैंड में फैकल्टी आफ स्काटलैंड का कम से कम दस वर्षों की प्रतिष्ठा का सदस्य न रह चुका हो, अथवा

(ग) ब्रिटिश इंडिया या संघ राज्य के उच्च न्यायालय का अथवा दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों का क्रमशः कम से कम दस वर्षों तक वकील रह चुका हो:

परन्तु—

(i) कोई भी व्यक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति पद पर नियुक्त होने का अर्ह न होगा जब तक कि वह अथवा उसकी प्रथम न्यायिक नियुक्ति के समय एक बैरिस्टर, फेकल्टी आफ एडवोकेट्स का सदस्य अथवा वकील न रहा हो, और

"(ii) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के सम्बन्ध में जिसका निर्देश इस उपधारा के अनुच्छेद (ख) और (ग) में दस वर्षों के लिए किया गया है पन्द्रह वर्ष का निर्देश प्रस्तावित कर दिया जाएगा।

---

1. धारा 200 (2) और 200 (3) गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट 1935

इस उपधारा के उद्देश्यों के लिए, किसी बैरिस्टर की प्रतिष्ठा अथवा फैकल्टी आफ एडवोकेट्स के सदस्य की प्रतिष्ठा, अथवा अवधि जिसके अन्दर वह व्यक्ति वकील रहा हो, बैरिस्टर होने के बाद फैकल्टी आफ एडवोकेट्स का सदस्य अथवा वकील होने के बाद जितने समय तक वह न्यायिक पद पर आसीन रहा है--काल गणना में वह समय सम्मिलित कर लिया जाएगा" ।

4.2 उपर्युक्त अधिनियम (गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935) की धारा 220 उपधारा (2) और (3) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से सम्बन्धित है। और निम्नलिखित शब्दों में हैं[1]

"(2) उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश सम्राट द्वारा उसके हस्ताक्षरों संयुक्त अधिपत्र द्वारा नियुक्त होगा और उस पद पर साठ वर्ष की आयु तक रहेगा:

परन्तु---

(क) गवर्नर को सम्बोधित अपने हस्तलेख से कोई भी न्यायाधीश अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है,

(ख) सम्राट के हस्ताक्षर से युक्त अधिपत्र द्वारा किसी न्यायाधीश को व्यवहार अथवा मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के आधार पर हटाया जा सकेगा यदि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति उसे सम्राट द्वारा निर्देश दिये जाने पर रिपोर्ट देती है कि न्यायाधीश को इस प्रकार के किसी आधार पर हटाया जा सकता है।

(ग) सम्राट द्वारा न्यायाधीश को फेडरल कोर्ट अथवा अन्य उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किये जाने पर न्यायाधीश का पद रक्त होगा।

(3) कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने का अर्ह नहीं होगा जब तक कि वह---

(क) इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का कम से कम दस वर्षों की प्रतिष्ठा का बैरिस्टर अथवा स्काटलैंड में फैकल्टी आफ एडवोकेट्स का कम से कम दस वर्षों की प्रतिष्ठा का सदस्य न रह चुका हो।

(ख) भारतीय सिविल सर्विस का कम से कम दस वर्षों का सदस्य जिसने कम से कम तीन वर्षों तक जिला जज के रूप में सेवा अथवा अपने अधिकारों का प्रयोग न किया हो, अथवा

(ग) ब्रिटिश इंडिया में कम से कम पांच वर्षों तक न्यायिक पद, जो मातहत न्यायाधीश अथवा लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश से कनिष्ठ न हो--पर न रहा हो, अथवा

(घ) कम से कम दस वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय अथवा इस तरह के दो या दो से अधिक न्यायालयों का क्रमशः वकील न रहा हो,

परन्तु कोई भी व्यक्ति लेट्रर्स पेटेन्ट द्वारा स्थापित किसी भी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद पर नियुक्त होने के अर्ह न होगा जब तक कि वह अथवा उसकी प्रथम न्यायिक नियुक्ति के समय, एक बैरिस्टर, फैकल्टी आफ एडवोकेट्स का सदस्य अथवा एक वकील न रहा हो; और जब तक कि उसने उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में तीन वर्षों तक सेवा न की हो।

---

1. गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935, धारा 220 (2) और (3)।

इस उपधारा के उद्देश्यों के लिए किसी बैरिस्टर की प्रतिष्ठा अथवा फैकल्टी आफ एडवोकेट्स के सदस्य की प्रतिष्ठा अथवा अवधि जिसके अन्य वह व्यक्ति वकील रहा हो, बैरिस्टर होने के बाद फैकल्टी आफ एडवोकेट्स का सदस्य अथवा वकील होने के बाद जितने समय तक वह न्यायिक पद पर आसीन रहा है—काल गणना में वह समय सम्मिलित कर लिया जायगा।"

2. संविधान सभा और इसकी समिति

संविधान सभा में चर्चा — संविधान समिति और उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में तदर्थ समिति।

4.3 संविधान सभा में तथा अन्य अनेक समितियों में जो न्यायाधीशों की नियुक्ति और अन्य सम्बद्ध मामलों के लिए नियुक्त की गयी थी, बहुत अधिक चर्चा और बहसें हुयी थी। संघ संविधान समिति की नियुक्ति के करीब करीब साथ ही संविधान और उच्चतम न्यायालय के अधिकारों पर विचार करने और रिपोर्ट देने के लिए एक विशेष उपसमिति[1] बनी थी। इस समिति में थे, श्री एस० वरदाचारियर, फेडेरलकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश, अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर, बी० एल० मित्तर, के० एम० मुंशी (तीनों ही सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित एडवोकेट) और बी० एन० राव संवैधानिक सलाहकार जो पहले उच्चतर न्यायिक पद पर रह चुके हैं। इस समिति ने 21 मई, 1947 की रिपोर्ट में[2] उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिकार के बारे में रिपोर्ट देने के अतिरिक्त दो आनुकल्पिक प्रणालियों का सुझाव उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में भी दी। समिति ने अपने इस सुझाव पर बहुत बल दिया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका के ही अनिर्बंधित विवेक पर न छोड़ा जाय।

सुझाई गई एक प्रणाली के अनुसार अवर न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से राष्ट्रपति को संस्तुति करनी चाहिए और इस संस्तुति की पुष्टि ग्यारह व्यक्तियों के पैनल में से कम से कम सात व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए। ग्यारह सदस्यीय पैनल में से कुछ उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तिगण केन्द्रीय व्यवस्थापिका के कुछ सदस्यगण और संघ के कुछ विधि पदाधिकारी होने चाहिए। अनुकल्पिक सुझाव था कि पैनल को प्रत्येक रिक्त स्थान के लिए तीन नामों का सुझाव प्रस्तुत करना चाहिए जिसमें से अन्तिम चयन का अधिकार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से राष्ट्रपति को ही। आवश्यक उपांतरणों के साथ इसी प्रणाली का सुझाव उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में भी दिया गया था— इसमें मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श की आवश्यकता नहीं थी। पैनल की स्वतंत्रता और उसमें विश्वसनीयता बनी रहे इसकी आश्वस्ति के लिए यह सुझाव दिया गया था कि पैनल का कार्यकाल दस वर्षों के लिए हो और वह तदर्थ न रहे।

इस सम्बन्ध में समिति की रिपोर्ट निम्नलिखित है :—

"हम ऐसा विचार करते हैं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार संघ के राष्ट्रपति के अनिर्बन्धित विवेक के ऊपर छोड़ना उपयुक्त नहीं होगा। हम संस्तुति करते हैं कि निम्नलिखित प्रणालियों में से कोई एक प्रणाली अपनायी जाय। एक प्रणाली तो यह है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से (जहां तक अवर न्यायाधीशों की नियुक्ति का सम्बन्ध है) राष्ट्रपति को किसी

1. उच्चतम न्यायालय पर तदर्थ समिति।
2. उच्चतम न्यायालय पर तदर्थ समिति (21 मई, 1947) यह रिपोर्ट संघ संविधान समिति की रिपोर्ट की परिशिष्ट है। बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1967) भाग 2 पृष्ठ 587, 590।

ऐसे व्यक्ति को जिसे वह उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के योग्य समझता है, नामांकित करना चाहिए और यह नामांकन पैनल के 11 सदस्यों में कम से कम सात सदस्यों द्वारा पुष्ट होना चाहिए। पैनल का गठन (निर्माण) करने वाले ऐकिक के उच्च न्यायालयों के न्यायमूर्तिगण, केन्द्रीय संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों और संघ के कुछ विधि अधिकारियों द्वारा होना चाहिए। दूसरी प्रणाली है कि 11 सदस्यों का पैनल 3 नामों की संस्तुति करें और राष्ट्रपति मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से एक व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त करें। यहां प्रक्रिया मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति में भी अपनायी जानी चाहिए, यह बात अवश्य है कि इस मामले में मुख्य न्याय-मूर्ति परामर्श के लिए सुलभ नहीं होंगे। इस बात की आश्वस्ति के लिए कि पैनल की स्वतंत्रता और उसमें आस्था बनी रहे पैनल तदर्थ नहीं होना चाहिए वरन् उसका कार्यकाल 10 वर्षों का होना चाहिए"।

संवैधानिक सलाहकार का स्मरण पत्र।

4.4 संवैधानिक सलाहकार ने अपने 30 मई, 1947 के स्मरण पत्र में[1] सुझाव दिया था कि राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य सभा के सदस्यों के दो तिहाई के अनुमोदन से की जानी चाहिए। उनके अनुसार राज्य सभा प्रिवी कौंसिल की ही भांति एक निकाय होना चाहिए जिसका कार्य राष्ट्रपति को कुछ ऐसे मामलों में निर्णय देना था जिनमें दलगत राजनीति ना हो और स्वतंत्रता बनी रहे। राज्य सभा के सदस्यों में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति भी थे और निर्दलीय आधार पर होना था। इस तरह की राज्य सभा विशेष समिति द्वारा संस्तुत पैनल का विकल्प थी, ऐसा संवैधानिक सलाहकार का मत था।[2]

4.5 संघ संविधान समिति[3] ने संवैधानिक सलाहकार के राज्य सभा के गठन के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और उसने न्यायधीशों की नियुक्ति में राष्ट्र-पति द्वारा मुख्य न्यायमूर्ति और यथा आवश्यक उच्चतम न्यायालय के अन्य न्याया-धीशों से परामर्श करने की प्रणाली का सुझाव दिया।

प्रारूपकार समिति।

4.6 इस अवसर पर प्रारूपकार समिति[4] द्वारा सुझाये गये एक संशोधन की ओर ध्यान देना उपयुक्त होगा। सुझाव के अनुसार राष्ट्रपति के लिये एक अनुदेशों का लिखत दिया जाना आवश्यक था।

प्रस्तावित प्रावधानों में से एक प्रावधान जिसे अनुदेशों के लिखत में सम्मिलित किये जाने का प्रस्ताव था। लोक सभा के कम से कम पन्द्रह सदस्यों की एक परामर्श-दायी समिति नियुक्त किये जाने के सम्बन्ध में था। उच्चतम न्यायालय के न्याया-धीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रणाली सुझायी गई थी:[5]

"(1) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के बारे में राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और भाग III के राज्यों के अतिरिक्त अन्य सभी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तिगण से परामर्श करेंगे।

1. कांस्टीट्यूशनल एडवाइजर मेमोरेंडम दिनांक 30 मई, 1947 / बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग ग्राफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन, मुख्य भाग पृष्ठ 338, 339 और 485।
2. अनुच्छेद 4:3 ऊपर।
3. यूनियन कांस्टीट्यूशन कमेटी रिपोर्ट उपबंध 18, बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग ग्राफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1967) भाग 2 पृष्ठ 583, 600 मुख्य भाग पृष्ठ 335-383, 485।
4. ड्राफ्टिंग कमेटी (फरवरी 1948) ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन अनुच्छेद 103 (2), बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग ग्राफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1947) भाग 3।
5. बी० शिवाराव (1968) मुख्य भाग पृष्ठ 491।

(2) अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों, भाग III के राज्यों के अतिरिक्त अन्य सभी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तिगण से परामर्श करेंगे।

(3) इस प्रकार के न्यायाधीशों से प्राप्त संस्तुतियां सलाहकार बोर्ड के समक्ष सलाह के लिये रखी जायेंगी। सलाकार बोर्ड का कार्य परामर्श देना था और अन्तिम निर्णय कार्यपालिका द्वारा लिया जाना था किन्तु उन मामलों में जिसमें सलाहकार बोर्ड की संस्तुति नहीं स्वीकार की जाये वहां असहमति के कारणों को लिखा जाये जो एक संस्मरण-पत्र के साथ संसद् के समक्ष रखा जाये। इस संस्मरण में बोर्ड की संस्तुति अस्वीकृत किये जाने के कारणों का उल्लेख होना चाहिये।"

डा० अम्बेडकर के विचार।

4 7 संविधान सभा में बहसों के दौरान डा० अम्बेदकर[1] ने दोनों सुझावों के बारे में चर्चा की। पहला सुझाव था कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति आवश्यक थी। दूसरा सुझाव था कि इन नियुक्तियों में लोक सभा अथवा राज्य सभा का अनुमोदन आवश्यक हो। डा० अम्बेदकर ने इन दोनों सुझावों को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार नियुक्तियों में संसद् को वीटो (veto) का अधिकार देना बड़ा ही दुरूह होगा और राजनीतिक दबाव की संभावनायें भी बढ़ जायेंगी। उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया कि किसी भी एक व्यक्ति को चाहे वह मुख्य न्यायमूर्ति जैसा प्रमुख व्यक्ति क्यों न हो वीटो का अधिकार देना बडा ही खतरनाक प्रस्ताव है। डा० अम्बेदकार ने इस संदर्भ में कहा :

"इस मामले के सम्बन्ध में मैं इस बात से सहमत हूँ कि जो बिन्दु उठाया गया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सदन में इस बारे में कोई भी मत-भिन्नता नहीं है कि हमारी न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र और अपने आप में सक्षम होनी चाहिये। प्रश्न यह है कि यह दोनों उद्देश्य कैसे प्राप्त किये जाएं। अन्य देशों में दो अलग-अलग मार्ग हैं जिससे यह प्रश्न सुलझाया गया है। ग्रेट ब्रिटेन में नियुक्तियां क्राउन द्वारा की जाती हैं जिस पर किसी प्रकार (वर्तमान कार्यपालिका) के निर्बन्धन नहीं हैं। यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में इसका विपरीत है, उदाहरणार्थ वहां उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों तथा राज्य के अन्य पदों के लिये सीनेट की सहमति आवश्यक होती है। ऐसा मुझे लगता है कि जिन परिस्थितियों में हम आज रहते हैं, जहां पर उत्तरदायित्व का भाव उस सीमा तक नहीं विकसित है जिस सीमा तक हमें संयुक्त राज्य अमेरिका में मिलता है, राष्ट्रपति द्वारा बिना किसी प्रतिबन्ध अथवा निर्बन्धन के केवल कार्यपालिका के परामर्श पर नियुक्त किये जाने का विचार खतरनाक है। इसी प्रकार से मुझे ऐसा लगता है कि कार्यपालिका द्वारा की गयी प्रत्येक नियुक्ति व्यवस्थापिका की सहमति से ही हो यह बहुत उपयुक्त प्रावधान नहीं है। इसके झंझर पूर्ण होने के अतिरिक्त इसमें नियुक्तियों की राजनीतिक दबावों और राजनीतिक विचारों से प्रभावित होने की संभावना है। अतः प्रारूपित अनुच्छेद एक-एक मध्य मार्ग सुझाता है। यह राष्ट्रपति को सर्वोच्च और अन्तिम अधिकारी नियुक्तियों के लिये नहीं बनाता। अनुच्छेद में प्रावधान है कि उन व्यक्तियों से जो मान्यताओं के अनुसार इस प्रकार के मामलों में उचित सलाह देने के पूर्णतया योग्य है, परामर्श लिया जाये। अतः मेरा निर्णय है कि इस प्रकार का प्रावधान इस समय के लिये पर्याप्त समझा जाये।"

"जहां तक मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति का प्रश्न है मुझे ऐसा लगता है कि जो इस प्रकार के अवधारणा के पक्ष में तर्क देते हैं वे मुख्य न्यायमूर्ति की निष्पक्षता और

1, कांस्टीट्यूएन्ट असैम्बली डिबेट्स भाग 8, पृष्ठ 257–260, 24 मई, 1948, पृष्ठ 258 पर।

उसके निर्णय के औचित्य के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हैं। मैं स्वयं व्यक्तिगत रूप से अनुभव करता हूं कि न्यायमूर्ति एक अत्यन्त ही प्रमुख व्यक्ति है, किन्तु न्यायमूर्ति भी अंततः हम सामान्य लोगों की ही भांति सारी निष्फलताओं, भावनाओं, धारणाओं के साथ सामान्य मनुष्य हैं। अतः मैं सोचता हूं कि मुख्य न्यायमूर्ति को ही व्यवहारतः न्यायाधीशों की नियुक्ति में वीटों का अधिकार देना जिस अधिकार को हमने राष्ट्रपति अथवा तत्कालीन शासन को नहीं दिया, एक खतरनाक अवधारणा ही है।"

III

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश।

4.8 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में सामान्य सहमति जैसी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में थी, कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका शासन के अनिर्बन्धित विवेक पर नहीं छोड़ दी जानी चाहिये। संवैधानिक सलाहकार ने प्राविंशियल संविधान[1] पर दिनांक 30 मई, 1947 के अपने स्मरण-पत्र में सामान्य सुझाव दिया कि गवर्नमेंट आफ इंडिया अधिनियम, 1935 के उच्च न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों को आवश्यक परिवर्तनों के साथ अपना लिया जाना चाहिये। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सुनिश्चित प्रश्न पर उसका प्रस्ताव का कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा राज्य सभा[2] के दो तिहाई सदस्यों के अनुमोदन पर किया जाना चाहिये।

प्रांतीय संविधान समिति (प्राविंशियल कांस्टीट्यूशन कमेटी)।

4.9 प्रांतीय संविधान समिति[3] ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसी बीच राज्य सभा की प्रस्थापना का प्रस्ताव त्याग दिया गया। समिति ने इसी तरह प्रस्तावित किया कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति संघ के राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति, प्रान्त के गवर्नर और उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के परामर्श से की जानी चाहिये ऐसा केवल मुख्य न्यायमूर्ति की स्वयं की नियुक्ति में नहीं किया जाना चाहिये।[4]

---

1. कांस्टीट्यूशनल एडवाइजर मेमोरंडम दिनांक 30 मई, 1947 बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1963) मुख्य भाग, पृष्ठ 497।
2. प्रस्तावित राज्य सभा प्रिवी कौंसिल की भांति एक निकाय था देखें अनुच्छेद 4.4 पर 3 पर।
3. प्राविंशियल कांस्टीट्यूशन कमेटी रिपोर्ट भाग II अनुच्छेद 1 बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1967) भाग 2 पृष्ठ 656, 668 जून-जुलाई, 1947।
4. अनेक प्राप्त सुझावों के लिये देखें बी० शिवाराव: दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन (1947) भाग 2, पृष्ठ 629-630।

अध्याय 5

संवैधानिक प्रावधान और वर्तमान प्रणाली

अनुच्छेद 124 और 214।

5.1 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अंततः जो संवैधानिक प्रावधान निश्चित हुये वे अनुच्छेद 124 और 217 में हैं। अनुच्छेद 124 के अनुसार उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से जैसा राष्ट्रपति इस कार्य के लिये आवश्यक समझे, के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और सीलयुक्त अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जायेगा। ऐसा न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक पद पर आसीन रहेगा। परन्तु मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त एक न्यायाधीश की नियुक्ति में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से अवश्य ही परामर्श लिया जायेगा। इस अनुच्छेद में यह भी प्रदत्त है कि कोई भी व्यक्ति एक न्यायाधीश नियुक्त होने का अर्ह न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और किसी उच्च न्यायालय का अथवा दो ऐसे न्यायालयों का क्रमशः कम से कम पांच वर्षों तक न्यायाधीश न रह चुका हो अथवा उच्च न्यायालय का अथवा दो ऐसे न्यायालयों का क्रमशः कम से कम 10 वर्षों तक वकील न रह चुका हो अथवा राष्ट्रपति की राय में प्रख्यात न्यायविद् हो।

5.2 अनुच्छेद 217 में प्रदत्त है कि उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति, राज्य के राज्यपाल और मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और सीलयुक्त अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जायेगा। और वह पद पर अनुच्छेद 224 में प्रदत्त अतिरिक्त अथवा कार्यकारी न्यायाधीशों को छोड़कर, बासठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक कार्य करेगा। (यह आयु प्रारम्भ में 60 वर्ष थी किन्तु बाद के संशोधन द्वारा 62 वर्ष कर दी गई।) अनुच्छेद 217 के उपबंध (2) के अनुसार कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने का अर्ह न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो अथवा कम से कम 10 वर्षों तक भारत में न्यायिक पद पर न रहा हो अथवा कम से कम उच्च न्यायालय का अथवा दो ऐसे न्यायालयों का क्रमशः 10 वर्षों का वकील न रहा हो अथवा राष्ट्रपति की राय में प्रख्यात न्यायविद् हो। राष्ट्रपति किसी व्यक्ति को जो उसकी राय में प्रख्यात न्यायविद् हो न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है---यह प्रावधान 42वें संशोधन का परिणाम है जिसे 44वें संशोधन द्वारा हटा दिया गया है।

अनुच्छेद 224—अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीश।

5.3 अनुच्छेद 224 में, जिसका अनुच्छेद 217 में वर्णन है, उच्च न्यायालय में अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान है और यह भी कहता है कि उच्च न्यायालय में अस्थायी कार्य में वृद्धि होने के कारण अथवा कार्य में बकाया अधिक होने के कारण यदि राष्ट्रपति को यह अनुभव होता है कि वर्तमान न्यायाधीशों की संख्या कुछ समय के लिये बढ़ा दी जानी चाहिये तब राष्ट्रपति द्वारा योग्य व्यक्तियों की अतिरिक्त न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति ऐसे सुनिश्चित समय के लिये जो दो वर्षों से अधिक नहीं, की जानी चाहिये। आगे और भी बताया गया है कि जब उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश (मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त) अनुपस्थिति के कारण अथवा अन्य किसी कारण वश अपने पद के कार्यों का निर्वाह करने

के अयोग्य है अथवा मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में कार्य करने के लिये अस्थायी रूप से नियुक्त होता है तब राष्ट्रपति किसी उपयुक्त व्यक्ति को उस न्यायालय के उस न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिये तब तक के लिये नियुक्त कर सकता है जब तक कि वह स्थायी न्यायाधीश अपने पद को संभाल नहीं लेता। किन्तु कोई भी व्यक्ति जो उच्च न्यायालय में अतिरिक्त अथवा कार्यकारी न्यायाधीश नियुक्त होता है 62 वर्ष की आयु प्राप्त होने के पश्चात् पद ग्रहण कर सकेगा।

वर्तमान प्रणाली।

5.4 न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान किस ढंग से कार्य करते हैं इसे वर्तमान प्रणाली के वर्णन से पूर्ण रूप से समझा जा सकता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिये जब भी स्थान रिक्त होता है भारत के मुख्य न्यायमूर्ति विधि और न्याय मंत्री को इस तथ्य से अवगत कराते हैं और किसी उपर्युक्त व्यक्ति का नाम रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये संस्तुत करते हैं। यदि विधि एवं न्याय मंत्री भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुत नाम को स्वीकार करता है तो वह प्रधान मंत्री की सहमति से राष्ट्रपति को चयन के लिये सलाह देता है। यदि किसी व्यक्ति जिसके नाम की संस्तुति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने की है के मामले में राष्ट्रपति कुछ धारणायें रखता है तब वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श कर सकता है जैसा वह आवश्यक समझे और परामर्श के पश्चात् किसी ऐसे तथ्य की ओर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का ध्यान दिलावे अथवा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुत न किये गये किसी अन्य व्यक्ति के नाम का सुझाव दे। मुख्य न्यायमूर्ति के विचारों के पश्चात विधि और न्याय मंत्री प्रधान मंत्री की सहमति से राष्ट्रपति को चयन के लिये सलाह देता है।

5.5 जब कभी भी भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद के लिये स्थायी रूप से स्थान रिक्त होने की संभावना होती है विधि और न्याय मंत्री द्वारा कार्यवाही की जाती है। यह भी परम्परा रही है कि निवर्तमान भारत का मुख्य न्यायमूर्ति ही अपने उत्तराधिकारी के नाम की संस्तुति करे यद्यपि संविधान के अन्तर्गत ऐसी किसी संस्तुति की आवश्यकता नहीं है।

वर्तमान प्रणाली का अध्ययन दल द्वारा प्रस्तुत संक्षिप्त विवरण।

5.6 प्रशासनिक सुधार आयोग के केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के बारे में अध्ययन दल द्वारा उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रणाली के सम्बन्ध में किया गया अध्ययन रिपोर्ट[1] में दिया गया है जिसका पाठ है—

"13.5 इस उपबंध को कार्य रूप देने के निमित्त प्रक्रिया संबंधी स्मरण-पत्र के अनुसार, न्यायाधीश के पद के लिए जब स्थायी रिक्त स्थान की संभावना होती है, मुख्य न्यायमूर्ति राज्य के मुख्य मंत्री को यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र उस व्यक्ति के बारे में जो स्थायी तौर पर नियुक्ति के लिए चुना जाना है, सूचित करेगा। मुख्य मंत्री राज्यपाल से परामर्श कर अपनी संस्तुति, संस्तुत किए गए व्यक्ति के बारे में पूर्ण विवरण के साथ केन्द्रीय गृह मंत्री को भेजता है। यदि मुख्य मंत्री या राज्यपाल मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा सुझाये गये व्यक्ति के अतिरिक्त किसी भिन्न व्यक्ति के नाम की संस्तुति करता है तो मुख्य न्यायमूर्ति को इसकी सूचना दी जाती है और उस पर उसकी राय मांगी जाती है। इन टिप्पणियों को मुख्य मंत्री के संदेश के साथ केन्द्रीय गृह मंत्री[2] द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश और प्रधान मंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति के पास चुनाव के लिए भेज दिया जाता है। यही प्रक्रिया मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति

---

1. स्टडी टीम आफ एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्मस कमीशन आन सेन्टर स्टेट रिलेशन्स (1967) भाग I, पृष्ठ 182–184 अनुच्छेद 13.5 से 13.9 तक।
2. प्रशासकीय सुधार आयोग की संस्तुति के अनुसार गृह मंत्री का उपर्युक्त कार्य, विधि और न्याय मंत्री को सौंप दिया गया है।

के लिए भी अपनायी जाती है अतिरिक्त इसके कि मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति की संस्तुति मुख्य मंत्री से प्रारम्भ होती है।

13.6 मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री के मध्य पत्र व्यवहार और मुख्य मंत्री और राज्य पाल के मध्य पत्र व्यवहार लिखित होते हैं और पत्र व्यवहार की प्रतियां मुख्य मंत्री की संस्तुति के साथ ही केन्द्रीय गृह मंत्री को अग्रेसित कर दी जाती ह। अभी हाल में मुख्य न्यायमूर्ति को अधिकृत किया गया है। (विधि आयोग की रिपोर्ट पर विचारोपरान्त) कि वह मुख्य मंत्री के साथ हुए पत्र व्यवहार की प्रतियां केन्द्रीय गृह मंत्री और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को भी सीधे ही प्रेषित कर दें।

13.7 जैसे ही नियुक्ति का अनुमोदन प्राप्त होता है गृह सचिव मुख्य मंत्री को सूचित करता है जो चयन किए गए व्यक्ति से—

(क) सिविल सर्जन अथवा जिला मेडिकल आफिसर (जिला चिकित्सा अधिकारी) से हस्ताक्षरित शारीरिक दक्षता का एक प्रमाणपत्र और

(ख) जन्म तिथि का एक प्रमाणपत्र

प्राप्त करता है।

"मुख्य मंत्री इन दस्तावेजों को गृह मंत्रालय भेज देता है। चिकित्सा प्रमाणपत्र सभी नियुक्ति के लिए चुने गए व्यक्तियों से प्राप्त किया जाता है भले ही ऐसी व्यक्ति नियुक्ति के समय राज्य शासन की सेवा में हों। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति का अधिपत्र हस्ताक्षरित होने के पश्चात् नियुक्ति की घोषणा कर दी जाती है और भारत कें राजपत्र में आवश्यक अधिसूचना गृह मंत्रालय द्वारा जारी कर दिया जाता है।

"13.9 संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार मुख्य मंत्री सहित मंत्रिपरिषद् राज्यपाल की उसके कर्तव्यों के निर्वाह में सहायता और सलाह के लिए है। ऐसी केवल उन मामलों में नहीं है जिनमें राज्यपाल को कर्तव्यों का निर्वाह अथवा किसी कर्तव्य का निर्वाह अपने विवेक से करना होता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राज्यपाल स्वविवेकानुसार नहीं अपितु मुख्य मंत्री की सलाह पर कार्य करता है।"

दो राज्यों के एक उच्च न्यायालय के लिये नियुक्ति प्रणाली में अन्तर।

5.7 यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति की प्रणाली में कुछ अन्तर किया गया है। यह ऐसे उच्च न्यायालयों के लिए किया गया है जो दो या दो से अधिक राज्यों के लिए हैं और जहां दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल भी एक ही हैं अथवा उच्च न्यायालय दोनों राज्यों का एक ही है और उनके राज्यपाल भिन्न-भिन्न हैं ऐसे मामलों में हर राज्य का मुख्य मंत्री और राज्यपाल अथवा प्रत्येक राज्य के राज्यपाल से परामर्श किया जाना रहता है।

मद्रास के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा 1947 प्रकर विचार।

5.8 यह उल्लेखनीय है कि 1947 में तत्कालीन मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया के बारे में कुछ भ्रांतियों का निर्देश किया था। उस प्रणाली के अनुसार मंत्री भी नियुक्ति में हस्तक्षेप कर सकते थे जबकि इसके पूर्व की प्रक्रिया में गवर्नर या गवर्नर जनरल बिना मंत्री से परामर्श किए कार्य कर सकता था। सरदार पटेल ने जो इस समय गृह मंत्री थे, प्रणाली में परिवर्तन का समर्थन किया। उन्होंने अपने 8 दिसम्बर, 1947 के गवर्नर जनरल को अपने पत्र[1] में लिखा—

"——————————स्पष्टतः पूर्व प्रक्रिया समय के प्रतिकूल है और नवीन व्यवस्था के अनुसार संस्तुतियों को मंत्री अथवा प्रधान मंत्री से केन्द्र सरकार में

1. सरदार पटेल : पत्र दिनांक आठ दिसम्बर, 1947।

संबंधित मंत्री को भेजा जाना चाहिए। गवर्नरों अथवा गवनर जनरल पर यह भार डालना उनके ऊपर प्रस्तावों और निर्णयों को चाहे वह अंतरिम हो अथवा अन्तिम तथा जिसके प्रति उनकी कोई सहानुभूति न हो परन्तु फिर भी वे सलाह मानने को बाध्य हैं—समझाने की जिम्मेदारी डालना उचित न होगा। मेरी राय में यह न तो उचित होगा और न ही न्यायपूर्ण होगा। मैं अपने आप में पूर्णतः स्पष्ट हूं कि जो प्रक्रिया हम लोगों ने निश्चित की है वह आज की संवैधानिक स्थिति के प्रति पूर्ण न्याय करती है और उत्तरदायित्व को जहां-जहां होना चाहिए वहीं डालती है ———। वास्तव में जो प्रक्रिया निश्चित की गयी है सभी प्रकार के पक्षपात को व्यवहारतः समाप्त कर देती चाहे वह मुख्य न्यायमूर्ति की हो अथवा राजनैतिक व्यक्ति की क्योंकि अन्तिम नियुक्ति मुख्य न्यायमूर्ति, प्रधान मंत्री और प्रांत के राज्यपाल, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, गृह मंत्री, प्रधान मंत्री और संघ के गवर्नर-जनरल के मध्य विचारों के आदान प्रदान का परिणाम होगी। ऐसी स्थिति में मुख्य न्यायाधीश ने जैसी आशंकाओं की कल्पना की है, हास्यास्पद है।"

गुणों के आधार के अतिरिक्त अन्य—आधारों पर नियुक्ति की धारणा—14वीं रिपोर्ट ।

5.9 फिर भी यह धारणा बनी हुयी है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति सदैव गुणों के आधार पर ही नहीं हुयी है और इससे उच्च न्यायालय की छवि पर दुष्प्रभाव पड़ा हैं। यह धारणा श्री एम० सी० सीतालवाड़ की अध्यक्षता में गठित विधि आयोग [1] की 14वीं रिपोर्ट जो 27 सितम्बर, 1956 को दी गई, उससे और भी दृढ़ हो गयी। आयोग ने कहा है यद्यपि अधिकांश नियुक्तियां सभी संबंधित व्यक्तियों, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सहित अन्य व्यक्तियों की सहमति से की गई हैं फिर भी आयोग ने मत व्यक्त किया है कि प्रचलित प्रणाली के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तिगण ने अपनी सहमति ऐसे व्यक्तियों के नामों के लिए दी है जिनके नाम उनके द्वारा संस्तुत नहीं थे अथवा उनके द्वारा संस्तुति किए गए नामों को कार्यपालिका अस्वीकृत न कर दे ऐसी स्थितियों से बचने के लिए उन्होंने अपनी सहमति दी है। आयोग के मत में उच्च न्यायालयों में अनेक असंतोषजनक नियुक्तियों राजनैतिक, क्षेत्रीय, सांप्रदायिक और अन्य आधारों पर की गई है जिसके परिणामस्वरूप योग्यतमव्यक्तियों की नियुक्तियां नहीं हो सकी हैं। इतने पर भी आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि राज्य की कार्यपालिका से परामर्श की प्रणाली जारी रहनी चाहिए और उच्च न्यायालय के नियुक्ति के पूर्व यह आवश्यक है। आयोग ने इस संबंध में निम्नलिखित सुझाव[2] दिए-:—

"(11) यद्यपि राज्य कार्यपालिका को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्रस्तावित नाम पर अपना मत व्यक्त कर सके किन्तु इसे यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होनी चाहिए कि यह नाम निर्देशित कर इसे केन्द्र को अग्रेसित कर सके।

(12) राज्य कार्यपालिका का कार्य मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निर्देशित नाम पर अपने विचार व्यक्त करने तक ही सीमित होना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो मुख्य न्यायमूर्ति से नए नाम मांग सके।

(13) राज्य के मुख्य न्यायमूर्ति के लिए यह अधिक उचित होगा कि वह अपनी संस्तुति की एक प्रति सीधे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को भेज दे जिससे देर न हो।

---

1. सारांश के लिये देखें 14वीं रिपोर्ट भाग 1, पृष्ठ 105-107 अनुच्छेद 821 ।
2. 14वीं रिपोर्ट भाग 1, पृष्ठ 106 अनुच्छेद 88 ।

(14) संविधान के अनुच्छेद 217 का संशोधन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिसमें यह प्रावधान हो सके कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति केवल उस राज्य के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के न्यायमूर्ति की ही सहमति से हो सकेगी;"

राज्य सभा में 14वीं रिपोर्ट पर बहस।

5.10 नवम्बर, 1959 में विधि आयोग की रिपोर्ट पर विचार हुआ। राज्य सभा में चल रही बहस[1] में 24 नवम्बर, 1969 तत्कालीन गृह मंत्री ने मध्यक्षेप करते हुए बताया कि 1950 से एक के अतिरिक्त अर्थात् 21 में से 210, सभी नियुक्तियों भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्वीकृति, सहमति या परामर्श से की गई हैं। इनमें से 196 व्यक्तियों को सभी संबंधित व्यक्तियों की सहमति थी। गृह मंत्री ने यह भी बताया कि 15 मामले ऐसे के जिनमें मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री अथवा राज्यपाल में मतैक्य नहीं था।

शासन द्वारा की गई कार्यवाही ।

5.11 भारत सरकार ने विधि आयोग की उपर्युक्त दी हुई संस्तुतियों का विचार किया। इन संस्तुतियों में से 11, 12 और 13 जिसे उद्धत किया गया है सरकार ने अस्वीकृत कर दिया प्रथम दो संस्तुतियों को अस्वीकार करने में सरकार ने इस तथ्य पर विश्वास किया कि संबंधित उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तिगण के मत को बिना विचार किए कोई भी नाम विचार के लिए योग्य नहीं समझा गया और सभी मामलों में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति स्वीकार की गई है। विधि आयोग की तीसरी संस्तुति कि बिना भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति के कोई भी नियुक्ति न की जाये, इस आधार पर अस्वीकृत कर दी गई कि यह संविधान की भावना के विपरीत होगा और भारत सरकार के अंतिम निर्णय के अधिकार को प्रतिबंधित कर देगा।

प्रशासकीय सुधार का अध्ययन दल ।

5.12 प्रशासकीय सुधार आयोग के केन्द्र-राज्य संबंधों का अध्यायन करने वाले अध्ययन दल ने उच्च न्यायालय की नियुक्तियों का फिर से विचार किया।[2] यह दल भी श्री एम० सी० सीतलवाड़ की अध्यक्षता में गठित था। इस दल ने भी विधि आयोग की उपर्युक्त संस्तुतियों पर विचार किया। दल ने निवेदन किया कि संस्तुति 11 और 12 को सरकार स्वीकार कर सकती है। अध्ययन दल ने यह बताया कि इन संस्तुतियों में विधितः निर्वाचित प्रतिनिधियों की किसी भी प्रकार अवहेलना का भाव नहीं है। इनको संस्तुतियों के द्वारा, दल के मत में, राज्य कार्यपालिका की भूमिका में परिवर्तन करना था। इनके द्वारा मुख्य न्यायमूर्ति के नए प्रस्ताव लाने के बजाय प्रस्ताव की सभा लोचना तक ही कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र को सीमित करना था। अध्ययन दल ने आगे यह भी सुझाव दिया कि राज्यपाल से परामर्श लेने की बाध्यता को संवैधानिक संशोधन द्वारा समाप्त कर देना चाहिए। यह तथ्य कि उच्च न्यायलय का बजट राज्य के खाते में नामे पड़ता है। दल की राय में, यह कोई पर्याप्त कारण नहीं है जिसके कारण राज्य कार्यपालिका को भी इन नियुक्तियों में हस्ताक्षेप का अवसर दिया जाये। दल ने अनुभव किया कि प्रत्याशी के बारे में राज्य सरकार की सभा लोचना—

(क) उसकी स्थानीय स्थिति,

(ख) उसका चरित्र और निष्ठा, और

(ग) उसके संग साथ, तक ही सीमित होना चाहिए।

---

1. राज्य सभा की कार्यवाही 24 नवम्बर, 1959, भाग 27, अंश 1, पृष्ठ 285, 289 (श्री गोविन्द बल्लभ पंत)।
2. स्टडी टीम आन सेन्टर-स्टेट रिलेशन्स आफ दि एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्मस कमीशन रिपोर्ट (1967) भाग 1, पृष्ठ 180, अध्याय 13।

राज्य सरकारों की भूमिका अध्ययन दल का मत ।

5.13 इस तथ्य पर जोर देते हुए कि इसकी संस्तुतियों से न्यायपालिका की स्वतंत्रता शक्ति ग्रहण करेगी। अध्ययन दल ने बताया कि इसकी संस्तुतियों को उच्च न्यायालय में नियुक्तियों के मामले में कोई संवैधानिक अधिकार नहीं होना चाहिए और राज्य सरकारों को इसके लिए कोई आग्रह भी नहीं करना चाहिए। दल के मत से मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा भाई-भतीजावाद तब भी संभव था फिर भी उपर्युक्त दशा में इसकी संभावना और भी कम हो जाती क्योंकि राजनीति के बाहर होने से बार दवाबों के प्रभाव में आने की संभावना कम हो जाएगी अध्ययन दल ने आशा प्रकट की कि यदि दो संस्तुतियों को स्वीकार कर लिया गया तो राज्य स्तर पर न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनैतिक दबाव कम हो जाएगा और असंतोषजनक नियुक्तियों के लिए राजनैतिक कार्यपालिका पर कम दोषारोपण होगा। दल के मत में इसका परिणाम व्यावसायिक सक्षमता को अधिक सभादरित किए जाने में होगा।

तीसरी संस्तुति के बारे में जो विधि आयोग की 14वीं थी---सभी नियुक्तियों में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति होनी चाहिए---अध्ययन दल ने यह स्वीकार किया कि भारत सरकार द्वारा उक्त संस्तुति न स्वीकार करने के कारणों में बल था। अतः अध्ययन दल ने विधि आयोग के इस संस्तुति का समर्थन नहीं किया।

प्रशासकीय सुधार आयोग का मत ।

5.14 अध्ययन दल की संस्तुतियों पर प्रशासकीय सुधार आयोग[1] ने विचार किया। प्रशासकीय सुधार आयोग ने अध्ययन दल की संस्तुतियों को स्वीकार नहीं किया और निर्णय दिया कि उच्च न्यायलय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया और ढंग जारी रहनी चाहिए। प्रशाकीय सुधार आयोग ने यह अवश्य संस्तुति की कि इस संबंध में गृह मंत्रालय की भूमिका को विधि मंत्रालय द्वारा निभाया जाना चाहिए। प्रशासकीय सुधार आयोग की यह संस्तुति शासन द्वारा स्वीकार कर ली गई। 1971 से एक अलग न्याय विभाग का निर्माण किया गया जो अन्य बातों के अलावा न्यायाधीशों की नियुक्तियों से संबंधित मामले को भी देखता है। गृह सचिव अब न्याय विभाग के सचिव के रूप में पदाविहित किए जाते हैं।

उच्च न्यायालय बकाया कार्य समिति का मत ।

5.15 उच्च न्यायलय बकाया कार्य समिति[2] जिसके अध्यक्ष न्यायमूर्ति जे० सी० शाह थे, ने इस प्रश्न पर विचार किया और विधि आयोग द्वारा की गई संस्तुतियों की पुनर्पुष्टि अपनी रिपोर्ट में थी। समिति ने विचार व्यक्त किया कि---

"हम संस्तुति करते हैं कि न्यायाधीश की नियुक्ति संस्तुति मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा राज्य के गवर्नर को सीधे भेज दी जाये और यदि नियत समय, जो परम्परा द्वारा निर्धारित किया जाये जैसे एक माह का समय, तक नियुक्ति के संबंध में कोई आपत्ति नहीं प्राप्त होती तो यह मान लिया जाना चाहिए कि गवर्नर को कोई आपत्ति नहीं है और मामले को केन्द्र सरकार के पास निर्देशित कर दिया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार को भी स्थान के रिक्त होने के पूर्व ही, नियुक्ति संबंधी कार्यवाही को पूर्ण किए जाने में समय के भीतर कदम उठाना चाहिए। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में परामर्श की व्यवस्था सरल ढंग से चलेगी यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए संस्तुत नाम/संस्तुति प्राप्त होने की तिथि से एक माह के भीतर आपत्ति न प्राप्त होने पर गवर्नर द्वारा भी संस्तुत मान लिया जाये और केन्द्र सरकार को भी उसी आधार पर संस्तुति पर विचार करने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा।

उपर्युक्त संस्तुति सरकार द्वारा स्वीकार नहीं की गई क्योंकि उसकी राय में संविधान में अनुच्छेद 217 ने गवर्नर से परामर्श लेना अनिवार्य बना दिया है और गवर्नर को मुख्य मंत्री की सलाह पर ही कार्य करना आवश्यक है---ऐसा मत है।

1. एडमिनिस्ट्रेटिव रिफाम्स कमीशन रिपोर्ट (1969 जून) एच० डी० (साधारण), अध्याय III, पृष्ठ 39, 40 ।

2. हाई कोर्ट ऐरियस् कमेटी रिपोर्ट (1972) पृष्ठ 80, अनुच्छेद 123।

अध्याय 6

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली के सम्बन्ध में संस्तुतियां

I. सामान्य

वर्तमान व्यवस्था के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय के मत।

6.1. हमने अभी तक उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधानों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रावधानों को कार्यरूप देने के लिये वास्तव में अपनायी जाने वाली औपचारिकताओं, और प्रणाली के क्रियान्वयन में परिवर्तन लाने के लिये समय-समय पर दिये गये सुझाव, और उन सुझावों (प्रस्तावों) पर लिये गये निर्णयों का विचार किया है। विधि आयोग[1] द्वारा निर्देश दिये गये अधिकांश उच्च न्यायालयों ने न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रणाली की अपने उत्तरों में करीब-करीब निर्देश कहा है।[2]

वर्तमान प्रणाली निर्दोष।

6.2. इस प्रश्न पर अपना सर्वाधिक ध्यान देते हुये हम उच्च न्यायालयों के मत से सहमति व्यक्त करते हैं और हमारा मत है कि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था जो हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा गहन विचार के उपरान्त और अन्य अनेक देशों में नियुक्ति के लिये प्रचलित प्रणालियों को ध्यान में रखकर विकसित की गई है, मूलत: निर्देश है। इसने (प्रणाली ने) संतोषजनक रूप से कार्य किया है और इसमें किसी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। कार्य प्रणाली के व्यवहार के कुछ पक्षों के बारे में हम कुछ संस्तुति करना चाहेंगे क्योंकि उनके द्वारा प्रणाली के कार्य करने में कुछ सुधार हो सकेगा। हम अपनी संस्तुतियां, मामलों के पक्षों पर विचार करते समय प्रस्तुत करेंगे।

II. उच्च न्यायालय : प्रक्रिया का प्रारम्भ

प्रारम्भ।

6.3. जहां तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति का सम्बन्ध है इस मामले का, जैसा उपर्युक्त चर्चा से ज्ञात होगा, प्रारम्भ उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा ही किया जाने वाला है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि कोई मामला अंतिम अवस्था में पहुंचे इसके पूर्व विभिन्न पगों के उठाने में बहुत समय लगता है और नियुक्तियों में देर न लगे इसलिये हम संस्तुति करते हैं कि सामान्य रिक्त स्थानों के लिये जो अवकाश ग्रहण करने के कारण होते हैं, स्थान के वस्तुत: रिक्त होने के कम से कम 6 माह पूर्व ही मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा कार्यवाहियां प्रारम्भ कर दी जानी चाहिये। यद्यपि प्रथम दृष्टि में 6 माह का समय अधिक मालूम होता है फिर भी यदि भूतकाल के अनुभव और कठिनाइयों को ध्यान में लिया जाय, जो अधिकारियों के मतों में भिन्नता के कारण पैदा होती हैं, तो हमें यह समय अधिक यथार्थ मालूम पड़ेगा कि रिक्ति की तिथि से 6 माह पूर्व ही प्रारम्भिक पग उठाये जाएं। इस नियम का पालन इस संभावना को समाप्त कर देगा कि पदासीन व्यक्ति के अवकाश ग्रहण के बाद भी रिक्त स्थानों की पूर्ति न की जाय।

79वीं रिपोर्ट में संस्तुति।

6.4. इस सम्बन्ध में हम अपनी 79वीं रिपोर्ट[3] को भी देख सकते हैं जिसमें कहा है—

"जैसा पहले कहा गया है कि 1977 में उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 352 की किन्तु औसत 287 न्यायाधीश ही पदासीन थे। इसी प्रकार

---

1. परिशिष्ट 2 देखें।
2. परिशिष्ट 3 देखें।
3. 79 वीं रिपोर्ट अनुच्छेद 3.10।

वर्ष 1976 में स्वीकृत संख्या 351 थी किन्तु केवल 292 न्यायाधीश ही पदारूढ़ थ। उन न्यायाधीशों को छोड़ दे जिन्हें सामान्य कार्य के बजाय दूसरे कार्य सौंपे गये थे तो भी यह कथन अपने स्थान पर सत्य है कि न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या से कम संख्या दोनों वर्षों में कार्य कर रही थी। अनुमोदित संख्या और पदासीन न्यायाधीशों की संख्या का यह अन्तर स्पष्टतः इस तथ्य के कारण है कि रिक्त स्थानों की पूर्ति तुरन्त ही (रिक्त होते ही) नहीं की गई। यह हमारा सुविचारित मत है कि नित्य बढ़ते हुये काम का बकायों का कारण स्थानों का रिक्त रहना है। हमारे मत में जब एक न्यायाधीश के अवकाश ग्रहण करने के कारण किसी स्थान के रिक्त होने की आशा हो, रिक्त स्थान को भरने का कार्य 6 माह पूर्व ही प्रारम्भ हो जाना चाहिये। जिस तिथि को स्थान रिक्त होने वाला होता है वह तिथि साधारणतया उच्च न्यायालयों के प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य लोगों को पता होती है। यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिये कि रिक्त स्थान को भरने वाले न्यायाधीश की नियुक्ति सम्बन्धी सारी औपचारिकतायें उस तिथि तक पूर्ण हो जावेंगी।"

मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श।

6.5. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के लिये संस्तुति करते समय हमारी राय में, मुख्य न्यायमूर्ति को अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिये नियुक्ति के लिये संस्तुति वाले पत्र में मुख्य न्यायमूर्ति को यह कहना चाहिये कि उसने अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श किया है और संस्तुति किये हुये नाम के बारे में सहयोगियों के मतों का उल्लेख करना चाहिये। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि संविधान के अन्तर्गत यह आवश्यक नहीं है कि मुख्य न्यायमूर्ति—संस्तुति करते समय अपने सहयोगियों से परामर्श करें। इस व्यवस्था के न होने पर भी हम ऐसा समझते हैं कि कई न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तिगण संस्तुति करने के पूर्व ऐसा परामर्श करते हैं परन्तु कई न्यायालयों में ऐसा नहीं होता। दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श के, हमारी राय में, स्वस्थ परिणाम होंगे और इससे आशंकित पक्षपात के भी अवश्य कम हो जावेंगे। मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति में दो वरिष्ठतम सहयोगियों के मतों को शामिल कर दिये जाने से अन्य अधिकारीगण भी जिनका इसमें हस्तक्षेप होता है और जो संस्तुति किये व्यक्ति की योग्यता के बारे में व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते—जान जाते हैं कि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुति किये गये व्यक्ति के बारे में अन्य दो वरिष्ठतम सहयोगियों की क्या धारणा है। यह स्पष्ट है कि संस्तुति किये गये व्यक्ति की उपयुक्ता के बारे में मुख्य न्यायामूर्ति के दो वरिष्ठतम सहयोगी भी उतनी ही जानकारी रखते होंगे। जितनी मुख्य न्यायमूर्ति किन्तु इसी समय हम इस बात पर भी बल देना चाहते हैं कि मुख्य न्यायमूर्ति के वरिष्ठ सहयोगियों के मत संस्तुति किये गये व्यक्ति की उपयुक्ता तक ही सीमित होना चाहिये। उन्हें यह स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिये कि वे किसी दूसरे व्यक्ति के नाम का सुझाव नियुक्ति के लिये कर सकें।

मुख्य न्यायामूर्ति[1] की कोई भी संस्तुति जिसमें उनके दो वरिष्ठतम सहयोगियों के सहमति हो सामान्यतया स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

III. पात्रता के लिये आयु और अन्य बातें

उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिये आयु।

6.6. अब हम आयु सीमा के बारे में विचार करेंगे जिसके भीतर किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाना चाहिये। इस पक्ष का विचार करते हुये हम इस बात पर बल देते हैं कि किसी भी न्यायाधीश में प्रौढ़ता उतनी ही आवश्यक है जितनों कानूनों की जानकारी, अनुभव और अन्य योग्यतायें। प्रौढ़ता सामान्यतया आयु के साथ ही आती है और जब कि बुद्धि की कुशाग्रता और विषयों

1. नीचे अनुच्छेद 6.13देखें।

की शीघ्रता से ग्राह्य शक्ति बड़ी योग्यतायें हैं फिर भी यह योग्यता (प्रौढ़ता) जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल आयु के बढ़ने से ही आती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये हम अनुभव करते हैं कि कम से कम 45 (पैंतालिस) वर्षों का व्यक्ति ही उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाना चाहिये। हमारी राय में साधारणतया, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये--आवश्यक प्रौढ़ता 48 वर्ष की आयु में प्राप्त होती है। फिर भी हम न्यूनतम आयु सीमा 45 वर्ष करने की संस्तुति करते हैं क्यों कि हम नहीं चाहते कि चयन का क्षेत्र बहुत संकुचित हो। जहां तक आयु की उच्चतर की आयु सीमा के निर्धारण का प्रश्न है बार से चुने गये व्यक्ति की आयु सीमा 54 वर्षों तक की होनी चाहिये। इस आयु तक यदि बार का सदस्य वास्तव में गुणों का धनी है तो उसने अपना स्थान अवश्य ही बना लिया होगा और बैंच के लिये चुनाव के सक्षम होगा। हमारी राय में यदि बार के सदस्यों का न्यायाधीश के रूप में कार्यकाल आठ वर्षों से भी कम का होने वाला हो तो उनका चुना जाना वांछनीय नहीं होगा। जहां तक जिला तथा सेवा में नियुक्त अन्य न्यायाधीशों का सम्बन्ध है, उनकी नियुक्ति के लिये हम कोई ऊपरी आयु सीमा निर्धारित करना नहीं चाहते क्यों कि कई राज्यों में नियुक्ति के लिये उनकी बारी तब तक आती है जब तक कि जिला न्यायाधीश अथवा सेवा न्यायाधीश के रूप में उनकी अधिवर्षिता की आयु नहीं पहुंच जाती है।

6.7. हमारी जानकारी में ऐसे भी तथ्य हैं जब हमारे द्वारा निर्देशित आयु से भी कम आयु में भी लोग पहले प्रतिष्ठित न्यायाधीश हुये हैं और उन्होने उस आयु में भी पर्याप्त प्रतिभा प्रदर्शित की है। किन्तु ऐसे महान न्यायाधीशों की संख्या अपवाद ही है। किसी नियम का सृजन करते समय सामान्य और स्वाभाविक मामलों का ही ध्यान रखा जाता है। हम यह बात अवश्य कहना चाहेंगे कि हम लोगों द्वारा दी गई आयु सीमा सम्बन्धी निर्देश अवश्य पालन किया जाना चाहिये। अपवाद स्वरूप मामलों में, जिसके कारणों को बताया जाना चाहिये, सम्बन्धित अधिकारियों को यह छूट होनी चाहिये कि इस आयु सीमा के बाहर के व्यक्तियों को भी नियुक्ति कर सकें।

41 मता के सम्बन्ध में अन्य मुद्दे।

6.8. उच्च न्यायालय में सम्माननीय पद के लिये न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अन्य जिन मुद्दों को ध्यान में रखना चाहिये वे हैं उनकी सक्षमता और कार्य कुशलता, इमानदारी के लिये सामान्य प्रसिद्धि, य. प्रतिष्ठा, परिश्रम शीलता, नम्रता, उनके द्वारा प्रदर्शित विषयों पर पहुंचने का संतुलन और न्यायाधीश पद के लिये प्रतिष्ठा का भाव जिसे वे नियुक्ति के पश्चात् अपने साथ लावेंगे। विगत तीन वर्षों का आय-कर का विवरण इस बात का अच्छा निर्देश दे सकता है कि न्यायाधीश पद के लिये नियुक्त होने वाले व्यक्ति की व्यावसायिक प्रतिष्ठा और क्षेत्र कितना था।

धर्म, जाति या प्रादेशिक आधार पर चायपन को प्रोत्साहन दिया जाय।

6.9. सिद्धान्ततः हम व्यक्तियों की धर्म, जातियों या क्षेत्र के आधार पर नियुक्ति के विरुद्ध हैं। हमारी राय में व्यक्ति की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने की सक्षमता और गुण ही चयन की कसौटी होनी चाहिये। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रुप में गलत व्यक्तियों के चुनाव ने जैसा हमने पहले कहा है[1] न्यायालयों की छवि, विश्वसनीयता और कार्य के गुण और परिमाण को प्रभावित किया है। इतना ही नहीं इसने योग्य व्यक्तियों की भविष्य में होने वाली रिक्तियों के लिये पीठासीन होने से भी रोक दिया है। किन्तु यह आदर्श की अवस्था है। जहां नीति वश यह राज्य के लिये अनिवार्य ही हो कि किसी धर्म जाति अथवा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व उच्च न्यायालय की पीठ पर आवश्यक है वहां उनमें से भी योग्यतम व्यक्ति

1. अध्याय 13 पर।

को ही नियुक्त करने का प्रयत्न होना चाहिये। धर्म, जाति अथवा क्षेत्र के आधार पर नियुक्तियों के कारण गुणों के आधार पर नियुक्ति का सिद्धान्त समाप्त हो जाता है। अतः हम यह संस्तुति करते हैं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जैसे गरिमा वाले पद के लिये जहां व्यक्ति की बौद्धिक और चारित्रिक योग्यता ही नियुक्ति के लिये सर्वोपरि होना चाहिये यदि अनिवार्य ही हो तो, धर्म आदि के आधार पर यथा संभव कम से कम नियुक्तियां होनी चाहिये।

शासन द्वारा विचार

6.10. वर्तमान व्यवस्था के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुति किया नाम मुख्य मंत्री को भेज दिया जाता है। मुख्य न्यायमूर्ति का पत्र प्राप्त होने पर मुख्य मंत्री या तो अपनी सहमति देता है अथवा असहमति या कुछ अपनी टिप्पणी करता है। ऐसी परिस्थिति में मुख्य मंत्री कुछ— और जानकारी मंगवा सकता है अथवा अपनी असहमति दे सकता है। मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा सुझाये नाम के अतिरिक्त भी अन्य नामों का सुझाव दे सकता हैं। ऐसी स्थिति में वह मुख्य न्यायाधीश को इसकी सूचना देता है और उनकी टीका उस पर आमंत्रित करता है। हमारी राय में मुख्य न्यायमूर्ति को मुख्य मंत्री के पास भेजते हुये, जैसा हमने पहले कहा है[1], दो वरिष्ठतम सहयोगियों के मत भी साथ ही भेज देना चाहिये। मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुतियों का अग्रेषण।

6.11. समय-समय पर यह शिकायत मिलती है कि मुख्य मंत्री मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई सिफारियों को अपने पास रखे रहते हैं जिससे न्यायाधीशों की नियुक्ति में अधिक देर हो जाती हैं। इसका परिणाम होता है रिक्त स्थानों का उच्च न्यायालय में बना रहना। इस प्रकार की देर को समाप्त करने के लिये 79वीं रिपोर्ट की संस्तुति पर ही बल देना चाहेंगे जिसमें यह ध्यान देने योग्य हैं कि विधि आयोग की संस्तुति[2] के अनुसार मुख्य न्यायमूर्ति को यह अधिकार दिया गया है कि वह मुख्य मंत्री को दी जाने वाली संस्तुति को प्रतिलिपि, केन्द्रीय गृह मंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश को सीधे भेज दे। 79वीं रिपोर्ट के सुझाव की पुनंपुष्टी।

6.12. किसी-किसी राज्य में[3] यह प्रणाली है कि मुख्य मंत्री और मुख्य न्यायमूर्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति के पहले अथवा आवश्यक संस्तुति के पश्चात् आपस में भेंट करते हैं। इस प्रणाली की अनेक लोगों द्वारा आलोचना भी की गई है। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री में कुछ सौदा हो जाता है। मुख्य मंत्री मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुति किये गये नाम को स्वीकार कर लेता है और बदले में किसी दूसरे रिक्त होने वाले स्थान के लिये अपने व्यक्ति के नाम के लिये संस्तुति करने को कह देता है। अतः यह सुझाव दिया गया है कि इस तरह की व्यक्तिगत भेंट न होने देना चाहिये और सारा कार्य पत्र व्यवहार द्वारा सम्पन्न होना चाहिये। हमने इस मामले पर विचार किया है और हमारी राय है कि ऐसा कोई कड़ा नियम नहीं बनाना चाहिये। बहुत सी ऐसी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं जिनको दूर करने में अधिक समय लग सकता है किन्तु मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री के बीच परस्पर भेंट से सुलझ जाती हैं। यह मूलतः मुख्य मंत्री और मुख्य न्यायमूर्ति के व्यक्तिगत सम्बन्धों पर निर्भर करता है। हम इस विचार को मानने के लिये तैयार नहीं हैं मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री की भेंट।

1. अनुच्छेद 6.53 पर देखें।
2. अध्याय 5 ऊपर।
3. 14वीं रिपोर्ट—भाग 1 पृष्ठ 73 अनुच्छेद 16।

कि मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री की प्रत्येक ऐसी भेंट सौदा करने के लिये होती है। कोई भी मुख्य न्यायमूर्ति जो यह समझता है कि उसने योग्यता के आधार पर संस्तुति की है वह किसी भी प्रकार का अवैध हस्तक्षेप सहन नहीं करेगा। इसी तरह किसी भी मुख्य न्यायमूर्ति को मुख्य मंत्री के सुझाव में यदि तथ्य और गुणों पर आधारित है तो स्वीकार करने में कोई झिझक नहीं दिखाना चाहिये।

मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों की संस्तुति।

6.13. इस स्थान पर हम फिर से उसी बात को कहते हैं जो हमने पूर्व में[1] कही है---एक परम्परा के विकास के लिये कि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दी गई संस्तुति जिससे दो वरिष्ठतम सहयोगी सहमत हों सामान्यतया स्वीकार कर ली जानी चाहिये।

मुख्य न्यायमूर्ति की भूमिका।

6.14. दूसरा प्रश्न जिस पर ध्यान देना चाहिये वह है कि क्या मुख्य मंत्री का भूमिका केवल मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुति किये गये नाम पर टीका करने की होनी चाहिये अथवा यदि मुख्य न्यायमूर्ति को सिफारिश से असहमत होता है तो वह (मुख्य मंत्री) दूसरे नाम का भी सुझाव दे सकता है। यह प्रश्न पहले भी उठाया गया था और पर्याप्त विचार[2] के पश्चात् यह तय किया गया था कि मुख्य मंत्री को अधिकार होना चाहिये कि मुख्य न्यायमूर्ति को संस्तुति से असहमत होने पर दूसरे नाम का सुझाव दे सके। ऐसी स्थिति में मुख्य मंत्री को मुख्य न्यायमूर्ति के विचार जानकर मामले को मुख्य न्यायमूर्ति के विचारों के साथ केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री के पास भेज देना चाहिये। इस मामले पर पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात् निर्णय लिया जा चुका है अतः इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहने को आवश्यकता नहीं है।

मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा कई नाम सुझाव में देने के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया।

6.15. एक सुझाव इस प्रकार का भी आया है कि उच्च न्यायालय की पीठ के रिक्त स्थान[3] की पूर्ति के लिये संस्तुति करते समय एक नाम नहीं वरन् नामों का एक पैनल भेजना चाहिये। हम इस सुझाव के स्वीकार किये जाने का विरोध करते हैं क्योंकि इस तरह को संस्तुति को परिणिति मुख्य न्यायमूर्ति के प्रस्ताव को हलका कर देने में होगी। इसका परिणाम यह भी होगा कि मुख्य न्यायमूर्ति के प्रस्ताव की प्रेरणा भी समाप्त हो जायेगी। हम ऐसा अनुभव करते है कि मुख्य-न्यायमूर्ति को उच्च न्यायालय की पीठ के लिये रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु एक नाम भेजने के बजाय, नामों का पैनल भेजने का सुझाव देने के लिये बाध्य करना अवांछनीय है।

कागजात का केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री को अग्रषण।

6.16. मुख्य मंत्री के स्तर पर कागजात की औपचारिकता पूर्ण हो जाने तथा राज्यपाल से परामर्श की संवैधानिक आवश्यकता पूरी कर लेने के पश्चात्, समस्त कागजात को केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री को भेज दिया जाता है। मंत्री, इस कागजात को यदि उसे कुछ आपत्ति न हुई तो उन्हें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पास भेज देता है। मुख्य न्यायमूर्ति अपनी टिप्पणी के साथ कागजात को फिर से केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री को भेज देता है। तत्पश्चात् प्रधान मंत्री के परामर्श के बाद कागजात को राष्ट्रपति के पास अग्रेषित कर दिया जाता है।

देर को कम करना पश्चात्वर्ती अवस्था में।

6.17. हम लोगों ने देरी को समाप्त करने के बारे में जो विचार[4] मुख्य मंत्री के स्तर पर कहीं हैं वही पश्चात्वर्ती अवस्था में भी ठीक हैं।

1. देखें अनुच्छेद 6.5 ऊपर।
2. देखें अनुच्छेद 6.11 ऊपर।
3. देखें अध्याय 5 ऊपर।
4. अनुच्छेद 6.11 ऊपर।

मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति

उच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश ही सामान्यतः मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त होना चाहिये।

6.18. अब हम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करते हैं। यह कहा जा चुका है[1] कि इस उद्देश्य के लिये संस्तुति का प्रारम्भ मुख्य मंत्री से ही होता है। हम ऐसा समझते हैं कि सामान्यतया उच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश ही मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाना चाहिये। उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों में इस बात को लेकर आक्रोश रहा है कि कोई कनिष्ठ व्यक्ति उनके दावे का अतिक्रमण कर नियुक्ति किया गया है। राज्य के बाहर के किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करते समय यह सावधानी बरतनी चाहिये कि उसकी नियुक्ति से वरिष्ठतम न्यायाधीशों के साथ-साथ अन्य न्यायाधीशों के प्रगति के अवसर अवरुद्ध न हो जायें।

बाहर से मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति

6.19. यदि ज्येष्ठतम न्यायाधीश मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है तो उसी न्यायालय के कनिष्ठ न्यायाधीश को मुख्य न्यायमूर्ति बनाना उचित नहीं होगा। ऐसी दशा में हमारी राय में यह ठीक होगा कि राज्य के बाहर से किसी न्यायाधीश को नियुक्त किया जाए। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इस प्रकार मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त न्यायाधीश पर्याप्त समय तक उच्च न्यायालय में रहा हो और उसकी ज्येष्ठता इतनी लम्बी हो कि उस उच्च न्यायालय के ज्येष्ठ न्यायाधीशों में इस बात से खलबली न मचे कि उनसे कनिष्ठ किसी न्यायाधीश को नियुक्त करके उनके दावे को ठुकरा दिया गया है। राज्य के बाहर से किसी को उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करते समय इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में उसकी पदावधि इतनी लम्बी न हो कि न केवल ज्येष्ठतम न्यायाधीश के बल्कि उस उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की प्रोन्नति की सम्भावनाएं समाप्त हो जाएं। 'प्रोन्नति की सम्भावना समाप्त होना' से हमारा अभिप्राय यह है कि न केवल किसी व्यक्ति के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है बल्कि मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में उसकी पदावधि भी कम हो जाती है। इस विषय में कोई बात अंक गणित के समान बारीकी से नहीं कही जा सकती है।

मुख्य न्यायमूर्ति का कार्यकाल।

6.20. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति करते समय यह विचार करना आवश्यक है कि क्या न्यायमूर्ति का पद ग्रहण करने वाले किसी भी व्यक्ति का कार्यकाल छः वर्ष से अधिक होना वांछनीय नहीं है? इसमें कोई संदेह नहीं है कि मुख्य न्यायमूर्ति के कार्यकाल का लम्बा होना कार्य की निरंतरता का भाव उत्पन्न करता है। और इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि न्यायमूर्ति छागला और राजमन्नार के रूप हमें ऐसे भी न्यायमूर्ति मिले जिनकी प्रतिभा में अपने पदों पर लम्बी अवधि तक रहने से किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। फिर भी हम ऐसा अनुभव करते हैं कि अधिकांश मामलों में लम्बी कार्यावधि कुछ कमजोरियों और अवांछित अवगुणों की शुरूआत करती है जो न्यायालय की गरिमा वृद्धि के लिये उपयुक्त नहीं है।

बाहर से न्यायाधीश

एक तिहाई न्यायाधीशों की बाहर राज्यों से नियुक्ति।

6.21. आगे हम प्रत्येक उच्च न्यायालय में लगभग एक तिहाई न्यायाधीशों की राज्य के बाहर से नियुक्ति सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करेंगे। इसकी संस्तुति राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा की गई थी। श्री सीतल वाड की अध्यक्षता में गठित विधि आयोग ने[2] इस सम्बन्ध में निम्न विचार व्यक्त किया था :

---

1. देखें अध्याय 5 ऊपर।
2. भारत का विधि आयोग—14वीं रिपोर्ट भाग I। पृष्ठ 100 अनुच्छेद 74।

"अभी हाल में देश में कई क्षेत्रों के बनाये जाने और उन क्षेत्रों के सदस्य राज्यों को अनेक उद्देश्यों के लिये एक इकाई मानने की प्रक्रिया में इन राज्यों के बार के सदस्यों में से उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों किये जाने की भूमिका तैयार होगी। ऐसी आशा है कि इसी ढंग से राज्य पुनर्गठन आयोग की यह आशा भी पूर्ण होगी की कम से कम उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या की एक तिहाई संख्या उन लोगों की होनी चाहिये जो राज्य के बाहर के हों।"

इसी प्रकार प्रशासकीय सुधार आयोग द्वारा नियुक्त केन्द्र राज्य सम्बन्धों को अध्ययन करने वाले दल[1] ने भी सुझाव दिया कि जहां तक व्यवहार में संभव हो उच्च न्यायालय के एक तिहाई न्यायाधीश राज्य के बाहर के होने चाहिये।

हम लोगों ने इस प्रश्न पर विचार किया और हम उपर्युक्त संस्तुति से बहुत कुछ सहमत भी हैं। हमारे मत में एक परम्परा होनी चाहिये जिसके अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक तिहाई संख्या अन्य राज्यों से होनी चाहिये। यह सामान्यतः प्रारम्भिक नियुक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिये न कि स्थानान्तरण से। यह मामले की प्रकृति के अनुसार ही बहुत ही धीमी गति और प्रक्रिया में किया जाना चाहिये चाहे इस अनुपात को प्राप्त करने में कुछ वर्ष अवश्य लग जाय।

उत्पन्न होने वाले संभावित लाभ।

6.22. इस प्रकार की परम्परा विकसित करने से राष्ट्रीय भावात्मक एकता ही दृढ़ नहीं होगी वरन् इससे उच्च न्यायालय के कार्य करने की प्रणाली में भी सुधार होगा। इससे उच्च न्यायालय में ऐसे न्यायाधीशों को पर्याप्त संख्या होगी जो स्थानीयता के विचारों से मुक्त होंगे या स्थानीय समस्याओं के उत्पन्न होने पर भावनाओं से मुक्त होंगे। जैसा विचार हमने अपनी एक पहले रिपोर्ट में व्यक्त किया है कि ठीक न्याय प्रशासन का एक आवश्यक तत्व है—न्यायाधीशों में उनके द्वारा लिये गये मामलों पर उनका निरासक्त भाव से विचार करने की क्षमता और सभी सम्बन्धित व्यक्तियों में इस विश्वास का सृजन कि उनके निर्णयों में निष्पक्ष भाव से विचार किया गया होगा। न्यायालयों के समक्ष बहुधा ऐसे प्रश्न आते हैं जिससे शक्तिशाली से भावनायें और विचार उठ खड़े होते हैं। इस प्रकार के मामलों को हाथ में लेने के लिये हमें ऐसे न्यायाधीशों की आवश्यकता होती है जो क्षेत्रीयता और स्थानीयता की भावनाओं से मुक्त ही नहीं हों वरन् उनके बारे में ऐसी मान्यता भी हो। इसके लिये बाहर से आने वाले न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य लोग उपयुक्त नहीं हैं। वृद्ध वकीलों में यह सामान्य धारणा है कि राजनैतिक परिणामों वाले मामलों को छोड़कर, अन्य न्यायिक मामलों के निर्णय में अंग्रेज न्यायाधीशों ने बहुत ही सुन्दर और न्यायपूर्ण निरासक्ति दिखाई है। हम भारत में भाग्यवान हैं कि हमारा देश बड़ा विशाल है और हमें बाहर राज्यों से न्यायाधीशों का कुछ प्रतिशत नियुक्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसा करने से (बाहरी राज्यों से न्यायाधीश नियुक्त करने से) हमें हानि की अपेक्षा लाभ कहीं ज्यादा प्राप्त होंगे।

बाहर से सक्षम व्यक्तियों को आकर्षित करने की संभावना।

6.23. कभी-कभी यह संदेह व्यक्त किया गया है कि क्या हम सक्षम व्यक्तियों को उच्च न्यायालय की पीठ पर नियुक्त करने में सफल होंगे यदि नियुक्ति के पूर्व ही लोगों को पता लग जायेगा कि उनकी नियुक्ति अपने राज्य के बाहर होगी। जहां तक इस पक्ष का सम्बन्ध है हम यह कहना चाहेंगे कि ऐसे लोगों की संख्या अधिक होगी जो अपने राज्य के बाहर जाने में अन्य मन एक होंगे किन्तु हमारी राय में कुछ प्रतिशत ऐसे भी लोग अवश्य होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के

1. प्रशासकीय सुधार आयोग—केन्द्र राज्य सम्बन्ध का अध्ययन दल की रिपोर्ट पृष्ठ 190 अनुच्छेद 13.20 (सितम्बर, 1963) भाग 1।

लिये राज्य के बाहर नियुक्त किये जाने में आपत्ति नहीं करेंगे। यदि जिला न्यायाधीश नियुक्त किये जा रहे हैं तो अधिकांश मामलों में प्रोन्नत किये जाने की आशा, पर्याप्त उत्प्रेरणा होगी और यह राज्य के बाहर नियुक्ति की सारी असुविधाओं, को दूर कर देगी। जहां तक बार के सदस्यों का सम्बन्ध है कुछ लोग राज्य के बाहर जाने के लाभ का अवश्य विचार करेंगे जिससे कि अवकाश ग्रहण के पश्चात् यदि वे ऐसा चाहे तो अपने राज्य के उच्च न्यायालय में जहां वे वकालत करते थे, फिर से वकालत प्रारम्भ कर सकते हैं। उसी उच्च न्यायालय में वकालत जिसमें वह न्यायाधीश था, सम्बन्धी रोक (प्रतिबन्ध) उस पर लागू नहीं होगी।

कार्यरूप देने की प्रक्रिया।

6.24. अब प्रश्न होता है कि उपर्युक्त संस्तुति को कार्यरूप देने की प्रक्रिया क्या हो? एक समय, ऐसा बताना उपर्युक्त होगा, यह प्रस्ताव था कि उच्च न्यायालयों में योग्य न्यायाधीश नियुक्त होने योग्य व्यक्तियों के नामों का एक सामान्य पैनल हो और उन्हीं नामों में से अनेक न्यायालयों के लिये नियुक्तियां की जाय। मुख्य न्यायमूर्तिगण के सम्मेलन में 1957 में इस प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि सेवारत जिला न्यायाधीशों में से अखिल भारतीय पैनल बनाना, जिसमें से नियुक्तियां की जा सके, संभव हो सकता था किन्तु ऐसा पैनल अधिवक्ताओं में से तैयार किया जाय यह बहुत कठिन था। 1960 में सम्पन्न सम्मेलन में मुख्य न्यायमूर्तिगणों का यह एकमत से विचार था कि अधिवक्ताओं में से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने योग्य नामों का अखिल भारतीय पैनल बनाना असंभव ही नहीं अत्यन्त ही अवांछनीय भी।

1960 जून में सम्पन्न हुये न्याय मंत्री सम्मेलन ने भी राज्य के बाहर के व्यक्तियों को न्यायाधीश नियुक्त करने के प्रश्न पर विचार करते समय जनवरी में न्यायमूर्तिगण द्वारा लिये गये निर्णय का भी विचार किया और केन्द्रीय गृह मंत्री यदि वे आवश्यक समझें तो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्रियों से ऐसी चर्चा प्रारम्भ किये जाने की प्रार्थना की। यह मामला फिर से 1961 के मुख्य न्यायमूर्तिगणों के सम्मेलन में विचार के लिये आया। सम्मेलन ने अपना मत व्यक्त किया कि अखिल भारतीय आधार पर उच्च न्यायिक सेवाओं के लिये प्रतियोगिता सम्बन्धी अपनी संस्तुति और उसी आधार पर कुछ अनुपात में नियुक्तियों सम्बन्धी अपना संस्तुति के कारण यह आवश्यक नहीं है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये बार के सदस्यों और राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों का कोई पैनल बनाया जाय।

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा सम्बन्धी संस्तुति सरकार द्वारा अस्वीकृत।

6.25. विधि आयोग ने अपनी 77वीं रिपोर्ट[1] में अखिल भारतीय न्यायिक सेवा सृष्ट करने का सुझाव दिया था। गृह मंत्रालय द्वारा लोक सभा में दिये गये उत्तर से यह स्पष्ट है कि आयोग की इस संस्तुति को भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया है।

उस सुझाव को अमान्य कर दिये जाने से प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक तिहाई बाहर राज्य के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न को हल करना अधिक आवश्यक हो गया है। बाहरी राज्य जिससे व्यक्ति की नियुक्ति होनी है—वे ही राज्य सामान्यतया होने चाहिये जो एक ही क्षेत्र के हों जैसा कि राज्य पुनर्गठन आयोग[2] की धारा 15 में दिया हुआ है। इसके लिये उस क्षेत्र के न्यायमूर्तिगण आवश्यक होने पर आपस में मिलते रहें अथवा पत्र व्यवहार करते रहें और बार और जिला न्यायाधीशों के नामों को इस तरह सुनिश्चित करते रहें। क्षेत्र के अन्य राज्य के इस तरह के नाम जिन्हें उपयुक्त समझा जाय उन्हें न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये संस्तुत कर दिया

1. 77वीं रिपोर्ट।
2. धारा 15—राज्य पुनर्गठन आयोग अधिनियम, 1956।

जाय। इसमें यह अवश्य सावधानी बरती जाय कि एक दूसरे राज्य से नियुक्ति में बराबर का व्यवहार यथासंभव रखा जाय और इस पर दृष्टि रखी जाय कि किसी भी राज्य को किसी प्रकार की हानि अथवा अनुचित लाभ उठाने न दिया जाय।

प्रस्तावित प्रणाली कठोर नहीं हो।

6.26. ऊपर की चर्चा में जिस प्रणाली की ओर इंगित किया गया है वह कठोर न बनायी जाय। यदि एक बार बाहर के राज्य से एक तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति का सिद्धान्त तय कर लिया जाय तब हमारी राय में प्रणाली का विकास करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। जिससे वांछित परिणाम न मिल सके और प्रणाली के अन्य विस्तृत ब्यौरों को न सुनिश्चित किया जा सके।

परामर्श दाता पैनल

परामर्शदाता पैनल।

6.27. परामर्श देने वाले पैनल का प्रश्न अब हमारे ध्यान देने योग्य है। जैसा पहले कहा जा चुका है, [1] विधि, न्याय और कम्पनी कार्यों के सचिव ने दिसम्बर 29, 1977 के विधि आयोग को पत्र द्वारा सुझाव दिया है कि उच्चतम न्यायालय के तीन अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्तिगण का एक अनौपचारिक परामर्श देने वाला पैनल हो। इसी पत्र में पैनल गठित करने में संवैधानिक कठिनाई की ओर भी निर्देश किया गया है। विधि आयोग के अध्यक्ष ने इस मामले पर टीका करते हुये और अपने मत से अवगत कराते हुये एक पत्र इसके पश्चात् भेजा था। इन विचारों को पहले उद्धृत किया जा चुका है।[2] विधि आयोग के अध्यक्ष को विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री का पत्र दिनांक 1 मार्च, 1978 का प्राप्त हुआ था। उस पर एक टिप्पणी तैयार की गई[3] थी। इस टिप्पणी की प्रतियां उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों को तथा अन्य सम्बन्धित जनों को टिप्पणी में दिये हुये सुझाव पर उनके विचार जानने के लिये भेजें गये थे। उस टिप्पणी के अनुच्छेद में कहा गया है कि---

"(3) संवैधानिक बाधाओं के पार करने के उपरान्त अनौपचारिक परामर्शदाता पैनल की (शायद, इसे न्यायाधीश नियुक्ति आयोग कहना अधिक उपयुक्त होगा--इसे आगे आयोग में कहा गया है) नियुक्ति वांछनीय है"

न्यायाधीश नियुक्ति आयोग के प्रस्ताव का समर्थन नहीं।

6.28 अधिकांश उच्च न्यायालयों ने जिन्होंने अपना मत इस सम्बन्ध में भेजा है उन्होंने न्यायाधीश नियुक्ति आयोग के निर्माण का विरोध किया है। आयोग, शब्द के कारण बहुत प्रतिक्रिया हुयी है। ऐसा समझा गया कि जिस आयोग के निर्माण का प्रस्ताव किया गया है वह लोक सेवा आयोग की भांति है यद्यपि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जैसे गरिमा वाले पद के लिये नियुक्ति होनी है। हम प्रतिक्रिया के पीछे कारणों को भलीभांति समझते हैं और उसकी सराहना करते हैं और भावनाओं के आदर स्वरूप हम न्यायाधीश नियुक्ति आयोग के सुझाव को वापस लेते हैं। ऐसा करने के पीछे, हम यह अवश्य कहना चाहेंगे कि लोक सेवा आयोग की तरह के किसी प्रकार का निकाय निर्माण करने का विचार नहीं था वरन् नियुक्तियों में राजनैतिक एवं अन्य विचारों का प्रभाव समाप्त करने के लिये तथा नियुक्तियों की निष्पक्ष विश्लेषण की आश्वस्ति के लिये ऐसे व्यक्तियों की जो अपनी निष्ठा, स्वतंत्रता और न्यायिक पृष्ठ भूमि के लिये प्रसिध्द हैं, उच्च स्तरीय पैनल गठित करने का सुझाव था जो इस कार्य में सहयोगी का कार्य कर सके।

---

1. देखें अध्याय 1 ऊपर।
2. देखें अध्याय 1 ऊपर।
3. देखें परिशिष्ट 21।

अधिक्रमण के लिये मुख्य न्यायमूर्ति और चार वरिष्ठतम सहयोगियों का पैनल।

6.29 इसी समय हम यह भी सिफारिश करना चाहते हैं कि जब भी ऐसा प्रस्ताव हो कि वरिष्ठतम न्यायाधीश की अधिक्रान्त का उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति की जाय तो मामला भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उनके चार वरिष्ठतम सहयोगियों के पैनल के सामने रखा जाय। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये वरिष्ठतम न्यायाधीश का दावा दुर्लभ नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि उपर्युक्त पैनल ऐसा करने के लिये पर्याप्त कारण न बताये। पैनल के सदस्यों में मत भिन्नता होने पर बहुमत का ही मत निर्णायक मत या पैनल का मत माना जाना चाहिये। हम यह संस्तुति इस लिये कर रहे हैं क्यों कि समय-समय पर ऐसी आलोचनायें की गई हैं कि वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रान्त का उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्तियां अन्य विचारों के आधार पर की गई है। इसके कारण शोर शराबा और असंतोष हुआ है। यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति जैसी प्रतिष्ठा वाले पद के लिये किसी प्रकार का विवाद न हो। यह उद्देश्य बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है जब कि किसी वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रमण कर उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति और इसके चार वरिष्ठतम सहयोगियों के पैनल द्वारा पूरी तरह जांचा जाय। उच्च न्यायालय की छवि को उज्जवल बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि किसी प्रकार के विवाद न हों।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का स्थानान्तरण।

6.30 अब हम उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण का विचार करते हैं। इस प्रश्न के सम्बन्ध में हम बल देकर कहना चाहते हैं कि सामान्यतया उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानान्तरण के हम विरुध्द हैं क्यों कि इस प्रकार की शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता है और यह न्यायाधीशों की स्वतंत्रता को भी प्रभावित करता है। किसी अन्य उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायामूर्ति के पद पर नियुक्ति के अतिरिक्त साधारणतया एक न्यायाधीश को उसी न्यायालय में रखा जाना चाहिये जहां के लिये उसकी नियुक्ति हुयी है। किन्तु ऐसे भी अवसर आते हैं (ऐसे अवसर बहुत ही दुर्लभ हैं) जब कि न्याय पालिका की छवि और प्रसिध्दि के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि किसी एक न्यायाधीश को किसी दूसरे उच्च न्यायालय को स्थानान्तरित कर दिया जाय। यद्यपि अधिकांश उच्च न्यायालय के ज्यादातर न्यायाधीशों ने उच्च स्तर बनाये रखने के लिये बहुत आदर प्राप्त किया है फिर भी कभी-कभी एकाध न्यायाधीशों के सम्बन्ध में शिकायतें सुनने को मिली है। ऐसे मामलों में, जहां ऐसी परिस्थितियों नहीं थीं कि सम्बन्धित न्यायाधीश पर महाभियोग चलाया जाय किन्तु यह आवश्यक हो गया था कि सम्बन्धित न्यायाधीश का स्थानान्तरण कर दिया जाय। ऐसे न्यायाधीश के स्थानान्तरण के इन परिस्थितियों में हौवा नहीं बनाना चाहियें। किन्तु यह सुनिश्चित हो जाना चाहिये कि इस स्थानान्तरण के अधिकार था दुरुपयोग नहीं किया जाय और स्थानान्तरण किसी अन्य विचारों से न किये जायें। स्थानान्तरण के अधिकार के दुरुपयोग किये जाने से रोकने के लिये हम संस्तुति करते हैं कि किसी भी न्यायाधीश का स्थानान्तरण बिना उसकी सहमति के न किया जाय अथवा उसका स्थानान्तरण तभी किया जबकि भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति और उसके चार अन्य वरिष्ठतम सहयोगियों के पैनल ने ऐसा स्थानान्तरण करने के लिये पर्याप्त कारण दिये हों। पैनल के सदस्यों में मत भिन्नता होने पर बहुमत का मत ही पैनल का मत मान लिया जाना चाहिये।

संवैधानिक पक्ष।

6.31 एक प्रश्न और भी हमारे ध्यान में आ सकता है, कि उपर्युक्त[1] परामर्शदाता पनल की निर्मिति में क्या कोई संवैधानिक अड़चन है। जहां तक इस पहलू

1. अनच्छेद 5·34

का सम्बन्ध है हम यह कहना चाहेंगे कि उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय[1] के अनुसार जहां संविधान अथवा कानून के अनुसार क, ख और ग तथा नियुक्ति-कर्ता अधिकारी से परामर्श करना आवश्यक है वहां यदि क, ख, ग अतिरिक्त घ से भी परामर्श किया जाता है तो नियुक्ति में कानूनी शैथिल्य रह गई और इसे निरस्त कर दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में चन्द्रमोहन विरुद्ध उ० प्र० राज्य[1] के मुकदमें को देखा जा सकता है।

जब तक कि उपर्युक्त मुकदमें में निर्धारित नियम वैध है तब तक तो बिना संविधान में संशोधन किये परमर्शदाता पैनल की नियुक्ति करना संभव नहीं है।

संविधान में शायद यह एक प्रावधान भी जोड़ना आवश्यक होगा—

"संविधान में उक्त लोगों से परामर्श के अतिरिक्त के अन्य किसी से परामर्श के कारण नियुक्ति अवैध नहीं होगी।"

पैनल की वांछनीयता।

6.32 हम यह कह दे कि सामान्यतया हम ऐसे सुझाव देने के विरुद्ध हैं जिन के लिये संविधान का संशोधन करना आवश्यक हो। इस अनभनेपन के बावजूद भी हम ऐसा अनुभव करते हैं कि अधिक्रमण या स्थानान्तरण के मामलों में बाहरी विचारों के दुष्प्रभाव को समाप्त करने के लिये परामर्शदाता पैनल का होना वांछनीय है। गत समय में ऐसे अवसर आये हैं जब स्थानान्तरण अन्य मामलों पर विचार कर, किये गये हैं या मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्तियों के वरिष्ठतम न्यायाधीशों को अधिक्रमित कर दिया गया है। इसके कारण असंतोष और शोर शराबा भी हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि उच्च न्यायिक दो के लिये ये कार्य (स्थानान्तरण और अधिक्रमण) विवाद के विषय न बनें। इस उद्देश्य की बहुधांश में प्राप्ति तभी हो सकती है जब स्थानान्तरण और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये वरिष्ठ-तम न्यायाधीश के दावे का अधिक्रमण ऐसा व्यक्तियों के उच्च स्तरीय निकाय द्वारा जांचा परखा जाय जिनकी इमानदारी और न्यायिक पृष्ठ भूमि प्रसिद्ध है।

उच्च न्यायालय की छवि और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये विवादों से बचाव आवश्यक है।

---

1. चन्द्र मोहन बनाम उ० प्र० राज्य ए० आई० आर० 1966 उच्चतम न्यायालय 1987, 1990। 77—बल्देव राज बनाम पंजाब और हरयाणा उच्च न्यायालय ए० आई० आर० 1976 उच्चतम न्यायालय 2490 भी देखें।

अध्याय 7

उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त करने की प्रणाली के सम्बन्ध में संस्तुति

7.1 भारत का उच्चतम न्यायालय इस देश का उच्चतम न्यायालय है। इसको इतने अधिकार प्राप्त हैं जितने संसार के कुछ ही अन्य न्यायालयों को प्राप्त हैं। यह दीवानी और आपराधिक मामलों की अपील का उच्चतम न्यायालय है। किसी अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध भी विशेष इजाजत मिलने पर अपील की जा सकती है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के विरुद्ध भी वैधता के प्रश्नों पर विचार केवल उच्चतम न्यायालय ही कर सकता है। इस न्यायालय को केन्द्र और राज्य या राज्यों के बीच भारत सरकार तथा राज्य या अनेक राज्य एक और राज्य या अनेक राज्य दूसरी ओर या दो राज्य या राज्यों के बीच आपस में--झगड़े होने पर अनन्यतः सुनवाई का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिकार की व्यापकता।

यह न्यायालय अपनी सलाह देने के न्यायाधिकार का प्रयोग तब करता है जब राष्ट्रपति किसी ऐसे कानूनी अथवा तथ्य के प्रश्न को विचारार्थ भेजते हैं जिनका लोक महत्व है अथवा जो प्रश्न उठ खड़े हुये हैं अथवा भविष्य में सामने आने वाले हैं। संविधान के भाग III अनुच्छेद 32 द्वारा प्रत्येक नागरिक और कुछ मामलों में अनागरिकों को भी अधिकार दिया गया है कि वे मूलभूत अधिकारों का हनन किये जाने पर न्यायालय में जा सकें इस उद्देश्य के लिये न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह निर्देश या आदेश या बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेधाज्ञा, पृच्छा का अधिकार, और उत्प्रेक्षण की प्रकृति की आज्ञाएं जारी कर सके। संविधान में यह भी प्रावधान है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत को सीमान्तर्गत सभी न्यायालयों पर लागू होगा।

7.2 हमारे संविधान के अन्तर्गत इस न्यायालय को जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य दिया गया है उसे देखते हुये यह आवश्यक है कि उच्चतम क्षमता वाले व्यक्ति ही इस न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त हों। और इनके चुनाव में गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के विचार पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिये। यह न्यायालय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता है। इससे यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इस न्यायालय के न्यायाधीशों को इतनी प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व प्राप्त होना चाहिये कि अपील में उच्चतम न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय का निर्णय यदि उक्त उलटा भी दिया जाता है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में यह भाव उत्पन्न होना चाहिये कि यह ऐसे न्यायालय द्वारा किया गया है कि जो इससे कानूनी दृष्टि से ही उच्च नहीं हैं वरन् न्यायाधीशों की क्षमता के कारण भी उच्च न्यायालय से वरिष्ठ हैं। मुख्य न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने अपने एक स्मरणीय निर्णय में उच्चतम न्यायालय भूमिका की तुलना सजग प्रहरी से की है। इसलिये भी तथा इसलिये भी कि उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून देश का कानून हो जाता है यह अत्यावश्यक है कि देश की न्यायिक योग्यता की सर्वोत्कृष्ट उपज न्यायालय की पीठ पर सुशोभित हो।

उच्चतम क्षमता वाले व्यक्तियों की नियुक्तियों की आवश्यकता।

7.3 एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व जिसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नियुक्ति करते समय ओझल नहीं किया जाना चाहिये वह है इस बात की आवश्यकता कि ऐसे व्यक्ति ही जो स्वतंत्र निष्पक्ष और बिना किसी प्रकार के आसक्ति के कार्य

स्वतंत्र और निष्पक्ष होने के लिये प्रतिष्ठा का महत्व।

करने के लिये उच्चतम प्रसिद्धि प्राप्त हैं—वे ही न्यायालय की पीठ के लिये उन्नत किये जाते हैं। किसी प्रकार की भी इस तरह की प्रसिद्धि कि अमुक व्यक्ति का मंत्रियों के साथ अथवा राजनीतिक व्यक्तियों के साथ उठना बैठना है, अयोग्यता समझी जानी चाहिये। यह इसलिये भी अत्यावश्यक है क्योंकि उच्चतम न्यायालय के समक्ष ऐसे भी मामले बहुधा आते हैं जिनमें राजनीति की बू होती है और जिनमें ऊंचे राजनीतिक व्यक्तित्व भी सम्मिलित होते हैं। यह बात स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति जिनका राजनीतिज्ञों अथवा मंत्रियों के साथ उठना बैठना है वे मुकदमे को करने में विश्वास नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

राजनीति से सम्बद्ध व्यक्ति।

7.4 अब प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या ऐसे व्यक्तियों को जिनका किसी समय राजनीति से अथवा राजनैतिक दल से सम्बन्ध था उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्त किये जाने से विवर्जित कर दिया जाना चाहिये। हमने इस मामले पर विचार किया है और हमारा विचार है कि किसी व्यक्ति का किसी समय पूर्वकाल में राजनीति से सम्बन्ध होने से, यदि वह अन्य दृष्टि से उपयुक्त है, तो इसके लिये अयोग्य नहीं ठहरा दिया जाना चाहिये। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अभी हाल में ही राजनीति में सक्रिय रहा है तो अवस्था भिन्न होगी। प्रश्न पर अनेक पहलुओं पर विचार करने पर हम इस विचार के हैं कि ऐसा कोई भी व्यक्ति जो कम से कम 7 वर्ष पूर्व अपने राजनैतिक सम्बन्ध न समाप्त कर चुका हो, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाना चाहिये। और इन सात वर्षों में भी यदि उसने अपनी ख्याति स्वतंत्रता, निष्पक्षता और निरासक्ति तथा राजनैतिक धारणा, पूर्वाग्रह या झुकाव से मुक्ति के लिये नहीं प्राप्त कर ली है तो भी उसे नियुक्ति योग्य नहीं समझा जाना चाहिये। इससे पर्याप्त आश्वासन मिल जायगा कि उसकी न्यायिक उद्घोषणायें उसके भूतकालीन राजनीतिक सम्बन्धों से अप्रभावित होंगी।

भारत में निष्पक्षता का महत्व।

7.5 हम इस तथ्य से अवगत है कि इंगलैण्ड, अमेरिका और अन्य कई देशों में राजनीति में सक्रिय व्यक्ति भी न्यायाधीश नियुक्त किये गये और उन्होंने पीठासीन होने पर भी प्रतिष्ठा प्राप्त की। किन्तु भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तथा इस बात को भी ध्यान में रखकर कि हम लोग न्यायाधीश की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को कितना अधिक महत्व देते हैं तथा संविधान ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य उन्हें दिया है इसका विचार कर हम यह आवश्यक समझते हैं कि उपयुक्त सावधानी अवश्य बरतनी चाहिये।

भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श।

7.6 जैसा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में वैसा ही उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में भी हम अनुभव करते हैं। कि भारत के मुख्य न्यायाधीश को संस्तुति करते समय अपने वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिये। इस उद्देश्य के लिये तीन सहयोगियों से परामर्श लिया जाना चाहिये। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के अपने संस्तुति वाले तथ्य का उल्लेख करना चाहिए और उनमें से प्रत्येक के संस्तुति सम्बन्धी मत को उद्धृत करना चाहिये। वरिष्ठतम सहयोगियों की भूमिका मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति की टीका करना मात्र होना चाहिये, उन्हें यह अधिकार नहीं होना चाहिये कि वे नये नाम का सुझाव दे सकें। मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श के परिणामस्वरूप संभावित पक्षपात और मनमानी करने के अवसर बहुत कम हो जायेंगे।

उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिये आयु।

7.7 अब हम उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नियुक्ति के समय की आयु के प्रश्न पर विचार करते हैं। जैसा हमने पहले भी कहा है[1] हमारे मत

1. ऊपर अनुच्छेद 7.2 देखें।

से न्यायिक क्षमता की सर्वोत्कृष्ट उपज उच्चतम न्यायालय में प्रतिष्ठित होनी चाहिये। इस गुण के अतिरिक्त कि न्यायाधीशों को कानूनी निष्णातता, संवैधानिक और अन्य कानूनों का अच्छा ज्ञान होना चाहिये उन्हें अपने में ऐसे गुणों से भी भरपूर होना चाहिये जो केवल समय के साथ आता है और जो लम्बी अवधि की विचारणा और स्मरण शीलता के कारण आती है। इसी गुण के कारण निर्णयों में गंभीरता और परिपक्वता आती है। अन्य न्यायालयों की बात न भी ले तो भी उच्चतम न्यायालय में इस गुण के बिना काम नहीं चल सकता है। उपयुक्त बात को सुनिश्चित करने के लिये हम यह सिफारिश करते हैं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के लिये आयु 54 और 60 के बीच होनी चाहिये। आयु की अधिकतम सीमा इस लिये दी गई हैं जिससे नियुक्त न्यायाधीश की कार्य अवधि कम से कम पांच वर्षों तक अवश्य रहे।

7.8 हम इस तथ्य से भी अवगत है कि पहले 54 वर्ष से भी कम आयु के न्यायाधीशों की भी नियुक्ति हो चुकी है और उन्होंने पर्याप्त प्रतिष्ठा भी अर्जित की है। सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर और सामान्य नियमों को भी ध्यान में रखकर हम ऐसा समझते हैं कि भविष्य में 54 वर्ष से कम आयु के किसी भी न्यायाधीश की उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति नहीं की जानी चाहिये।

वरिष्ठता का सिद्धान्त।

7.9 हम ऐसा अनुभव करते हैं कि वरिष्ठता के सिद्धान्त का पालन मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति में किया जाना चाहिये। किन्तु पूर्व के अनुभव हमें बताते हैं कि जब भी नियुक्ति में इस सिद्धान्त की उपेक्षा की गई, बहुत ही बड़े विवाद उठ खड़े हुए। और इस तरह मुख्य न्यायमूर्ति की छवि को भी क्षति पहुंची है। वरिष्ठता के सिद्धान्त से हटकर मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति करने का अनियंत्रित अधिकार कार्यपालिका में निहित किये जाने से अधिकार के दुरूपयोग किये जाने का खतरा हैं। इससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता को भी खतरा है और यह न्यायाधीशों के दृष्टिकोण को भी प्रभावित कर सकता है।

यदि किसी अपवादस्वरूप मामले में शासन यह समझता है कि वरिष्ठता का सिद्धान्त छोड़ना उपयुक्त होगा तो ऐसी दशा में हमारे मत में उच्चतम न्यायालय के सभी वर्तमान न्यायाधीशों के पैनल को यह मामला सिपुर्द कर देना चाहिये। वरिष्ठता के सिद्धान्त का परित्याग पैनल द्वारा निर्णीत पर्याप्त कारणों के आधार पर ही होना चाहिये। मत भिन्नता की दशा में बहुमत का मत ही पैनल का निर्णय माना जाना चाहिये।

क्षेत्र का प्रतिनिधित्व।

7.10 एक अन्य बिन्दु पर भी विचार करना उपयुक्त होगा। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिये, गुणों के आधार पर नियुक्ति की आवश्यकता के बावजूद, विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न को भी महत्व देना चाहिये। ऐसा होने पर भी यह भरसक प्रयत्न होना चाहिये कि क्षेत्र का सर्वोत्तम व्यक्ति ही न्यायालय में नियुक्त किया जाय।

सारांश

न्यायाधीश के गुण।

प्रस्तुत रिपोर्ट में हमारी संस्तुतियों के मूल में हमारी यह इच्छा ही प्रेरणा के रूप में रही है कि जनता की आस्था न्यायाधीशों और न्यायपालिका के उच्चतम स्तर में बनी रही रहे। एक न्यायाधीश के आवश्यक गुणों का वर्णन करते हुये युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व सहायक न्यायमूर्ति टाम सी० क्लार्क ने निम्नलिखित शब्दों में कहा है:

"न्यायिक स्वतंत्रता, निःसंदेह, न्यायिक उत्तरदायित्व के बोध से प्राप्त होती है। न्यायाधीश उसी तत्व के बने होने चाहिये जो अच्छी न्यायपालिका के लिये आवश्यक हैं। यह तत्व कौन सा है जिसके बारे में मैं बता रहा हूं? यह गुण होना चाहिये किसी भी दिये हुये मामले में कानून के नियम को लागू करने की क्षमता। नियम को वृद्धि मानी और स्पष्टता के साथ लागू करने की योग्यता होनी चाहिये। यह गुण होना चाहिये तथ्य को पहचानने की। सत्य को पहचाने और उसे असत्य जंजाल से अलग करने के लिये खुला दिमाग होना चाहिये। एक दृढ़ किन्तु सहानुभूति पूर्ण हृदय भी होना चाहिये। हां। न्यायपूर्ण निर्णय को सहास के साथ घोषित करने और उसे लागू करने की क्षमता भी होनी चाहिये। इमानदारी? हां यह तो सर्वोपरि है। सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में ऐसा व्यवहार होना चाहिये जिसको और कोई भी उंगली न उठा सके। एक ऐसी अन्तारात्मा होनी चाहिये जो भय और निराशा उत्पन्न करने के स्थान पर प्रतिदिन का कार्य समाप्त होने पर उसमें ऐसी आवाज सुनाई दे "आज तुम वास्तव में न्यायाधीश के पद के उपयुक्त सिद्ध हुये और वेश की भी सार्थकता सिद्ध की जो पहन रखी थी।' जन सामान्य के मानस में न्यायाधीशों को अपनी छवि बनाये रखने के लिये उन्हें सीजर की पत्नी की भांति संदेह से परे होना चाहिये।"[1]

हम अपनी आशा प्रकट करते हैं कि, किसी सीमा तक, हमारी संस्तुतियां, उपर्युक्त गुणों की प्राप्ति में सहायक होंगी।

अब हम इस रिपोर्ट को जान रटलज, जूनियर के शब्दों को उध्दृत करते हुये समाप्त करते हैं। ये शब्द जान रटलज ने 1802 में युनाइटेड स्टेट्स की प्रतिनिधि सभा में "न्यायपालिका की ढाल" शब्द को व्याख्यायित करते हुये कहे थे[2]

"जब तक यह ढाल जनता के पास है तब तक वे अधिक या स्थायी रूप से दबाये या सताये नहीं जा सकते हैं। कोई भी सरकार अन्याय और हिंसा से शासन कर सकती है, ऐसे ही व्यक्तियों को पदासीन किया जा सकता है जिनमें मत बटोरने के अतिरिक्त कोई गुण नहीं है हमारे देश का व्यापार मूर्खतापूर्ण सिद्धान्तों की आड़ में दबाया जा सकता है, दुर्भावनाओं के कारण जन-धन की हानि हो सकती है, किन्तु जब तक हमारे यहां निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायपालिका है, लोगों के हित सुरक्षित रहेंगे। स्वतंत्र न्यायपालिका पर लोगों को निर्भर होने दीजिये, वे यह सिद्ध कर दिखायेंगे कि व्यक्ति अपने पर शासन करने में सक्षम है। लोग अपने को जो अन्य गणराज्यों का नष्ट हो जाने का भाग्य रहा है उस भाग्य से सुरक्षित कर लेंगे। वे यह गलत सिध्द कर देंगे कि गणतंत्रीय शासन नहीं चल सकता है।"

1. यू० एस० उच्चतम न्यायालय के सहयुक्त न्यायमूर्ति टाम सी० क्लार्क: जुडिसियल सेल्फरेगुलेशन: दि पोटन्शियल (विन्टर–1970) 35 ला एण्ड कन्टम्पोरेरी प्राब्लम्स संख्या 1, पृष्ठ 37, 38, 39.
2. 11 अनाल्स आफ कांग्रेस 739–40 (1802), "जुडिसियल इंडिपेंडेंस" में इरविंग आर० काफमैन ने उध्दृत किया (मार्च, 1979) भाग 88, संख्या 4, येल ला जर्नल 681, 716.

अध्याय 9

संस्तुतियों का सार संक्षेप

हम अपनी संस्तुतियों का संक्षेप नीचे प्रस्तुत करते हैं:—

सामान्य

(1) न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान संवैधानिक प्रणाली मूलतः निर्दोष है और यदि समग्रता से विचार करें तो इसने संतोषप्रद रीति से कार्य किया है और इसमें किसी मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। फिर भी इसकी कार्यप्रणाली के कुछ पक्षों के बारे में सुधार लाने के लिये संस्तुति करनी आवश्यक है।[1]

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्ति

(2) उच्च न्यायालय में सामान्य रिक्तियों के लिये मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संभावित रिक्ता होने के कम से कम छः माह पूर्व ही रिक्तियों को भरने की कार्यवाही प्रारम्भ कर देनी चाहिये।[2] ऐसा किया किया जाना इस लिये आवश्यक है कि वर्तमान पदासीन व्यक्ति द्वारा अवकाश ग्रहण किये जाने पर रिक्त स्थान अधिक समय तक खाली न रहे।[3]

(3) उच्चन्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नियुक्ति की संस्तुति करते समय मुख्य न्यायमूर्ति को अपने दो वरिष्टतम सहयोगियों से परामर्श लेना चाहिये। मुख्य न्यायमूर्ति को अपने सिफारिशी पत्र में परामर्श लिये जाने की बात का उल्लेख कर देना चाहिये और अपने दोनों सहयोगियों के मत को भी पत्र में लिख देना चाहिये।[4]

(4) मुख्य न्यायमूर्ति को ऐसी किसी भी सिफारिश को सामान्यता स्वीकार कर लिया जाना चाहिये जिसमें उसके दो वरिष्टतम सहयोगियों की भी सहमति हो।[4]

(5) न्यायाधीश में अन्य क्षमताओं के अतिरिक्त प्रौढ़ता भी आवश्यक है। यह प्रौढ़ता साधारणतया आयु के साथ आती है और बुद्धि की प्रखरता और विषयों को शीघ्र ग्रहण करने की क्षमता प्रौढ़ता का स्थान नहीं ले सकते हैं। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नियुक्त होने वाले व्यक्ति की न्यूनतम आयु 45 वर्ष होनी चाहिये।

बार के सदस्यों में से चुने जाने वाले व्यक्तियों की अधिकतम आयु 54 वर्ष की होनी चाहिये।[4]

यद्यपि कम आयु में भी नियुक्त होने वाले न्यायाधीशों में से कुछ बहुत ही असाधारण प्रतिभावान् न्यायाधीश हुये हैं फिर भी ऐसे मामले अपवाद ही हैं।

उपरिनिर्दिष्ट आयु सीमा का साधारणतया पालन किया जाना चाहिये। यदि किन्हीं अपवादों में उक्त नियम का परित्याग किया जाता है तो सम्बन्धित अधिकारियों को उसके लिये कारणों का उल्लेख करना चाहिये।[5]

1. अनुच्छेद 6.1 और 6.2।
2. 79 वीं रिपोर्ट की संस्तुति जो अनुच्छेद 3:10 में उध्दृत है।
3. अनुच्छेद 6.3 और 6.4।
4. अनुच्छेद 6.5।
5. अनुच्छेद 6.7।

(6) उच्चन्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नियुक्त होने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिन अन्य बातों को ध्यान में रखना चाहिये वे हैं उनकी सक्षमता, प्रतिष्ठा, इमानदारी के लिये प्रसिद्धि, कठिन परिश्रम, नम्रता का व्यवहार और संतुलित दृष्टि-कोण ।

बार के सदस्यों के मामलों में गत 3 वर्षों का आयकर का विवरण भी देखना सुसंगत होगा ।[1]

(7) सिध्दान्त रूप में यह आयोग उच्च न्यायालय की पीठ के लिये क्षेत्र, जाति अथवा धर्म के आधार पर नियुक्त का विरोधी है। केवल गुणों के ही आधार पर नियुक्ति का विचार होना चाहिये। ऐसे मामलों में भी यदि प्रशासन की नीति के आधार पर न्यायालय की पीठ पर धर्म, जाति अथवा क्षेत्र के आधार पर नियुक्ति आवश्यक हो तो यही प्रयत्न होना चाहिये कि योग्यतम व्यक्ति ही निर्वाचित हो। इस तरह की नियुक्तियों की संख्या यथा संभव न्यूनतम होनी चाहिये ।[2]

(8) मुख्य मंत्री के पास नाम को भेजते समय मुख्य न्यायमूर्ति को यह उल्लेख करना चाहिये कि दो अन्य वरिष्टतम न्यायाधीश सहयोगियों का क्या मत है ?[3] यह बात पहले भी कही जा चुकी है।

(9) 6 माह की अवधि सीमा होनी चाहिये जिसके भीतर (79वीं रिपोर्ट के अनुच्छेद 3 : 11 द्वारा पहले ही संस्तुति की जा चुकी है) ही राज्य सरकार द्वारा मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति पर विचार आदि संपूर्ण कर लिया जाना चाहिये। मुख्य न्याय-मूर्ति की संस्तुति पर मुख्य मंत्री द्वारा तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिये और उसे एक माह से अधिक समय के लिये अपने पास नहीं रख छोड़ना चाहिये। यदि इस सम्बन्ध में पत्राचार की आवश्यकता हो ही तो वह प्रयत्न होना चाहिये कि मामला कहीं पड़ा ही न रह जाय ।[4-5]

(10) उच्च न्यायालय की नियुक्तियों को लेकर मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री के बीच व्यक्तिगत बैठकों के न होने देने के सम्बन्ध में कोई किसी कड़े नियम बनाने की आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि कई बार पत्र व्यवहार को बनिस्बत व्यक्तिगत बैठकों द्वारा कठिनाई पर विचार अधिक त्वरित किया जा सकता है। फिर भी यह मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री के परस्पर सम्बन्धों पर निर्भर करता है। जैसा मान लिया जाता है, हर एक बैठक का परिणाम लेन देन या सौदेबाजी ही नहीं होती है ।[6]

(11) जैसा पहले भी कहा जा चुका है, मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई संस्तुति जिससे दो वरिष्टतम सहयोगी सहमत हों, सामान्यतया स्वीकार ही कर ली जानी चाहिये ।[7]

(12) इस प्रश्न पर कि मुख्य मंत्री की भूमिका केवल मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा संस्तुत नाम की टीका करनी ही होनी चाहिये अथवा मुख्य मंत्री किसी अन्य नाम का भी सुझाव दे सकता है। निर्णय पहले ही लिया जा चुका है और इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ।[8]

---

1. अनुच्छेद 6.8
2. अनुच्छेद 6.9
3. अनुच्छेद 6.10
4. अनुच्छेद 6.11
5. 79वीं रिपोर्ट के अनुच्छेद 3.11 में दी हुयी संस्तुति की पुष्टि की गई
6. अनुच्छेद 6.12
7. अनुच्छेद 6.13 और अनुच्छेद 6.5
8. अनुच्छेद 6.14

(13) यह सुझाव कि मुख्य न्यायमूर्ति को संस्तुति करते समय नामों के पैनल का सुझाव देना चाहिये, स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि इसका प्रभाव मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति को कमजोर बना देने में होगा।[1]

(14) देरी को समाप्त करने के लिये जो सुझाव मुख्य मंत्री के स्तर पर दिया गया है वे ही सुझाव अगले स्तरों पर ही उचित ठहराये जाते हैं।[2]

(15) सामान्यतया उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाना चाहिये। किसी कनिष्ठ न्यायाधीश की मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति का प्रस्ताव कनिष्ठ न्यायाधीशों द्वारा मुख्य मंत्री के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध बैठलाने की अवांछनीय प्रणाली को जन्म देगा। इससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायालय की छवि को भी क्षति होगी। मुख्य मंत्री की भूमिका मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के लिये कार्यवाही में पहल करने तक सीमित तथा वरिष्ठतम न्यायाधीश को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त होने के लिये अपने विचारों की अभिव्यक्ति तक ही सीमित होनी चाहिये।[3]

(16) यदि मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये वरिष्ठतम न्यायाधीश को नियुक्त करना उपयुक्त नहीं हैं तो भी कनिष्ठ न्यायाधीश को इसके लिये नियुक्त नहीं किया जाना चाहिये। ऐसी परिस्थिति में किसी बाहर के न्यायाधीश को नियुक्त करना अधिक उचित होगा। इस न्यायाधीश को भी न्यायालय की पीठ पर लम्बे अवधि तक पीठासीन होना चाहिये और इतनी वरिष्ठता होनी चाहिये जिससे अन्य न्यायाधीशों में परेशानी न हो। बाहरी न्यायाधीश को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करते समय यह सावधानी बरतनी चाहिये कि इस नियुक्ति से उच्च न्यायालय के अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीशों तथा अन्य न्यायाधीशों के प्रोन्नति के अवसर अवरुद्ध न हो जायं। निःसंदेह, इन मामलों में गणितीय प्रमितता पर जोर नहीं दिया जा सकता है।[4]

(17) यह वांछनीय है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद पर कोई भी व्यक्ति सामान्यतया 6 वर्षों से अधिक न रहे।

छः वर्षों[5] से अधिक लम्बा कार्य काल जहां एक और न्यायालय के कार्यों को निरन्तरता प्रदान करता है वहीं यह अधिकांश मामलों में कुछ दुर्बलताओं और अवांछनीय धाराओं को भी जन्म दे देता है।

(18) एक ऐसी परम्परा को जन्म दिया जाना चाहिये जिसके अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक तिहाई न्यायाधीश अन्य राज्य से होने चाहिये। यह प्रारंभिक नियुक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिये, स्थानान्तरण के द्वारा नहीं। यह प्रक्रिया धीरे धीरे लागू होना चाहिये और अनुपात की संख्या को प्राप्त करने में कुछ वर्ष लगेंगे।[6]

इस परम्परा से भावात्मक राष्ट्रीय एकता ही दृढ नहीं होगी वरन् उच्च न्यायालयों के कार्य में भी वृध्दि और सुधार होगा। इससे निर्णयों का आधार निष्पक्षता होगी। अन्य राज्यों से न्यायाधीश लाने के लाभ अधिक हैं बनिस्बत संभावित हानियों के।[7]

---

1. अनुच्छेद 6.15
2. अनुच्छेद 6.16 और 6.17
3. अनुच्छेद 6.18
4. अनुच्छेद 6.19
5. अनुच्छेद 6.20
6. अनुच्छेद 6.21
7. अनुच्छेद 6.22

(19) यद्यपि राज्य के बाहर नियुक्ति के लिये अधिकांश व्यक्ति तैयार नहीं होंगे फिर भी लोगों का कुछ प्रतिशत इस प्रकार की नियुक्तियों पर आपत्ति नहीं करेगा। जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिये प्रोन्नति के अवसर पर्याप्त उत्प्रेरणा सिद्ध होंगे। बार के सदस्यों के लिये अवकाश प्राप्ति के बाद पुन: उसी राज्य के उच्च न्यायालय में वकालत करने की उत्प्रेरणा होगा।[1]

(20) पहले दिया गया सुझाव[2] भारतीय न्यायिक सेवा के बारे में अमान्य हो चुका है अत: अधिक आवश्यक है कि कोई अन्य प्रणाली खोज निकाली जाय जिससे राज्य के बाहर के एक तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति सुनिश्चित हो सके। ये बाहर के राज्य सामान्यतया उसी क्षेत्र[3] के होने चाहिये जिस क्षेत्र में नियुक्त व्यक्ति का राज्य स्थित है।[4]

(21) इस उद्देश्य के लिये मुख्य न्यायमूर्तिगण, को यथा आवश्यकता मिलना चाहिये अथवा पत्रों के द्वारा व्यक्ति का नाम तय किया जाना चाहिये।[4]

(22) किन्तु अन्य राज्यों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में यह सावधानी बरतनी चाहिये कि राज्यों से नियुक्ति की पारस्परिक संख्या यथासम्भव समान हो।[4]

(23) उपर्युक्त प्रक्रिया में कुछ भी अपरिवर्तनीय नहीं हैं। यदि एक बार सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाय तो वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिये कोई प्रणाली ढूंढ निकालने में कोई कठिनाई नहीं होगी।[5]

(24) परामर्शदाता पैनल के निर्माण का प्रस्ताव जो विधि आयोग द्वारा भेजी गयी प्रश्नावली में "न्यायाधीश नियुक्ति आयोग"—के नाम से वर्णित है अधिकांश उच्च न्यायालयों द्वारा प्रश्नों के उत्तर में अनुमोदित नहीं है। अत: यह प्रस्ताव त्याग दिया जाता है। किन्तु यहां यह बताना आवश्यक है कि लोक सेवा आयोग जैसा आयोग नियुक्त करने का कोई प्रस्ताव नहीं था। नियुक्तियों के मामले में बाह्य विचारों का परित्याग और निष्पक्षता से विश्लेषण की आश्वस्ति के लिये अपनी इमानदारी, स्वतंत्रता और न्यायिक पृष्ठभूमि के लिये विख्यात व्यक्तियों वाले पैनल को सहयुक्त, करना ही उद्देश्य था।[6, 7]

(25) इसी समय विधि आयोग यह भी संस्तुति करता है कि जब कभी भी वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रमित कर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति का प्रस्ताव हो तब मामला भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की और अन्य उसके अन्य वरिष्ठतम सहयोगियों के पैनल को सिपुर्द कर दिया जाना चाहिये।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये वरिष्ठतम न्यायाधीश का दावा दुर्लक्षित नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि उपर्युक्त पैनल द्वारा ऐसा किये जानें

1. अनुच्छेद 6.23
2. 77वीं रिपोर्ट
3. राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956, धारा 15
4. अनुच्छेद 6.25
5. अनुच्छेद 6.26
6. अनुच्छेद 6.27
7. अनुच्छेद 6.27—6.28

के लिये पर्याप्त कारण न दिये जायें। पैनल में मत भिन्नता होने पर बहुमत का मत ही पैनल का मत माना जाना चाहिये। इस प्रक्रिया से असंतोष और विवाद से बचा जा सकता है और इससे उच्च न्यायालय की छवि भी सुरक्षित रहेगी।[1]

(26) सामान्यतया एक न्यायाधीश को जहां उसकी नियुक्ति हुयी है वहीं बना रहना चाहिये यदि वह किसी अन्य उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति न नियुक्त कर दिया जाये। किन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं जब न्यायपालिका की प्रतिष्ठा और छवि की रक्षा के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि न्यायाधीश का स्थानान्तरण कर दिया जाये। ऐसे अवसर बहुत कम होते हैं और ऐसे मामलों में महाभियोग चलाना भी उपर्युक्त नहीं होता है।

(27) स्थानान्तरण के अधिकार का दुरुपयोग रोकने के लिये यह संस्तुति की जाती है कि किसी भी न्यायाधीश का स्थानान्तरण बिना उसकी सहमति के न किया जाय जब तक कि भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और उसके अन्य चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के पैनल द्वारा ऐसा करने के पर्याप्त कारण न दिये जाएं। यदि पैनल के सदस्यों में मतैक्य न हो तो बहुमत का मत ही पैनल का मत माना जाना चाहिये।[2]

(28) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का अधिक्रमण करने और स्थानान्तरण करने के लिये भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उसके चार वरिष्ठतम सहयोगियों का पैनल बनाने तथा पैनल से परामर्श सम्बन्धी संस्तुति को कार्य रूप देने के लिये संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी।[3]

साधारणतया विधि आयोग संवैधानिक संशोधनों की संस्तुति करने का विरोधी है। किन्तु ऐसी कार्यवाहियों से उच्च न्यायिक पदों के लिये विवाद न हों इसकी सुनिश्चतता के लिये पैनल आवश्यक है।[4]

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति

(29) संविधान के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को जिस महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने का भार दिया गया है उसे ध्यान में रखकर और इसके न्यायाधिकार की प्रकृति और व्यापकता का विचार कर यह आवश्यक है की उच्चतम क्षमता वाले व्यक्ति इस न्यायालय के लिये न्यायाधीश नियुक्त हों और इस सम्बन्ध में केवल गुणों का ही विचार किया जाना चाहिये। यह न्यायालय उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता है इससे यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इस न्यायालय के न्यायाधीशों को इतनी प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व प्राप्त हो कि अपील में उच्चतम न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय का निर्णय यदि उलट भी दिया जाता है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में यह भाव आना चाहिये कि यह ऐसे न्यायालय द्वारा किया गया है कि जो न्यायाधीशों की योग्यता के कारण उच्च न्यायालय से वरिष्ट है।[5]

(30) ऐसे व्यक्ति हो जो स्वतंत्रता, निष्पक्षता और निर्लिप्तता के लिये उच्चतम प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं, वे होके उच्चतम न्यायालय की पीठ के लिये प्रोन्नत किये जाने चाहिये। यदि मंत्रियों के साथ किसी भी प्रकार की उठने बैठने की प्रवृति का पता लगे तो इसे अयोग्यता मानी जानी चाहिये।[6]

1. अनुच्छेद 6.29।
2. अनुच्छेद 6.30।
3. अनुच्छेद 6.31।
4. अनुच्छेद 6.32।
5. अनुच्छेद 7.1 और 7.2।
6. अनुच्छेद 7.3।

(31) यद्यपि किसी राजनीतिक दल के साथ पहले कभी का सम्बन्ध अवरोध नहीं समझा जाना चाहिये फिर भी उच्चतम न्यायालय में तभी नियुक्ति होनी चाहिये जब उसके राजनैतिक सम्बन्ध नियुक्ति के कम से कम सात वर्ष पूर्व समाप्त हो चुके हों और इस सात वर्ष की अवधि में उसने अपनी स्वतंत्रता और राजनैतिक विचारों अथवा कारणाओं से मुक्ति के लिये ख्याति अर्जित कर ली हो ।[1]

भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये और यह भी ध्यान में लाते हुये कि हम स्वतंत्रता और निर्लिप्तता को कितना अधिक महत्व देते हैं तथा उच्चतम न्यायालय का क्या महत्व है, यह सावधानी आवश्यक है ।[2]

(32) भारत के मुख्य न्यायाधीश को किसी व्यक्ति के नाम को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिये नाम का सुझाव देते समय अपने तीन वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिये । और अपनी संस्तुति को अग्रेसित करते समय परामर्श के परिणाम को भी बता देना चाहिये और अपने सहयोगियों के मतों को भी अपनी संस्तुति में उद्धृत कर देना चाहिये । इन न्यायाधीशों की भूमिका मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति पर टीका करने मात्र तक ही सीमित होनी चाहिये । इस प्रकार के परामर्श से मनमानी या पक्षपात के अवसर न्यूनतम हो जायेंगे ।[3]

(33) उच्चतम न्यायालय के लिये नियुक्त न्यायाधीशों में न्यायिक और कानूनी कुशाग्रता के अतिरिक्त उन्हें ऐसे गुणों से भी भरपूर होना चाहिये जो केवल समय के साथ आते है, जिसका शाब्दिक वर्णन कठिन है–जो लम्बी अवधि की विचारणा और स्मरण शीलता के कारण आती है यही गुण परिपक्वता प्रदान करता है । अतः उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति की उपयुक्त आयु 54 और 60 के बीच होनी चाहिये । यद्यपि पहले ऐसे भी न्यायाधीश हो चुके हैं जो 54 वर्ष से कम आयु में न्यायाधीश हुये और ख्याति अर्जित की है फिर भी तथ्यों को ध्यान में रखते हुये यह उचित होगा कि उच्चतम न्यायालय की पीठ के लिये नियुक्तियां 54 वर्ष से कम आयु के लोगों की न की जाएं ।[4]

(34) मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्ति में वरिष्ठता के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिये । इस सिद्धान्त के परित्याग करने से पहले विवाद उठ खड़े हुये हैं और मुख्य न्यायमूर्ति पद की छवि को भी प्रभावित किया है । कार्यपालिका में अनियंत्रित अधिकार निहित करने से अधिकार के दुरुपयोग की संभावना है और इससे न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायाधीशों की निष्पक्षता भी खतरे में पड़ सकती है । यदि किसी व्यक्ति विशेष के मामले में शासन इस सिद्धान्त का परित्याग करना चाहता है तो उसे यह मामला उच्चतम न्यायालय के सभी वर्तमान न्यायाधीशों के पैनल को निर्दिष्ट कर देना चाहिये । इस सिद्धान्त का परित्याग पैनल द्वारा दिये गये पर्याप्त कारणों के पश्चात् ही होना चाहिये । मत भिन्नता की दशा में बहुमत का मत ही पैनल का निर्णय माना जाना चाहिये ।[5]

(35) ऐसे मामलों में जहां क्षेत्र के आधार पर उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति का मामला हो वहां उस क्षेत्र के योग्यतम व्यक्ति की ही नियुक्ति न्यायालय में की जानी चाहिये ।[6]

1. अनुच्छेद 7.4 ।
2. अनुच्छेद 7.5 ।
3. अनुच्छेद 7.6 ।
4. अनुच्छेद 7.7 और 7.8 ।
5. अनुच्छेद 7.9 ।
6. अनुच्छेद 7.10 ।

हस्ताक्षर	एस॰ एन॰ शंकर	सदस्य
हस्ताक्षर	टी॰ एस॰ कृष्णमूर्ति अय्यर	सदस्य
हस्ताक्षर	पी॰ एम॰ बक्शी	सदस्य-सचिव

अगस्त 10, 1979.

परिशिष्ट 1

सरकिट जजेज नामिनेशन आयोग यू० एस० ए०

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति के आदेश सं० 11972 के द्वारा जजेज नामिनेशन कमीशन, नियुक्त किया गया। इस आयोग का कार्य संयुक्त राज्य के कोर्ट आफ अपील में नियुक्त किये जाने के लिये राष्ट्रपति को सर्वोत्तम योग्य व्यक्तियों के नाम भेजना था।[1]

आदेश द्वारा 13 पैनलों का आयोग कार्य करने के लिये नियुक्त हुआ था जिसमें प्रत्येक संघ सरकिट के एक और पांचवें तथा नवें सरकिट के दो-दो पैनल होने थे।

कोर्ट आफ अपील में स्थान रिक्त होने पर पैनलों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जानी थी जिनका कार्य राष्ट्रपति को ऐसे व्यक्तियों के नामों की संस्तुति करना था "जिनका चरित्र, अनुभव, योग्यता और कानून के समक्ष समान न्याय के प्रति प्रतिबद्धता उन्हें संघ न्यायपालिका की सेवा करने के पूर्ण अर्ह बनाता हो।" प्रत्येक पैनल में अध्यक्ष सहित ग्यारह सदस्य होने थे जिनमें "दोनों लिंग, अल्पसंख्यक समुदाय तथा वकीलों और अन्य समुदाय के करीब-करीब बराबर सदस्य सम्मिलित किये जाने थे।"

संयुक्त राज्य अमेरिका में पैनल का कार्य।

2. आदेश द्वारा पैनल के कार्य निम्न रूप में दिये गये हैं:—

"राष्ट्रपति द्वारा पैनल को अधिसूचना जारी किये जाने पर कि वह यूनाइटेड स्टेट्स कोर्ट आफ अपील्स में रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व तथा विवेक का प्रयोग एक नामनिर्देशिती के चुनाव करने में करना चाहता है, पैनल अपना कार्य प्रारम्भ करता है। अधिसूचना जारी होने पर पैनल—

(क) सम्बन्धित भौगोलिक सीमा के अन्दर एक सार्वजनिक सूचना जारी करेगा जिसमें रिक्त स्थान की सूचना होगी और संभावित नामनिर्देशिती के बारे में सुझाव मांगा गया होगा;

(ख) संभावित नामनिर्देशिती के सम्बन्ध में खोजबीन करेगा;

(ग) संभावित नामनिर्देशिती व्यक्तियों में से कौन यूनाइटेड स्टेट्स सरकिट न्यायाधीश का कार्य करने में पूर्ण सक्षम है इसकी जांच करेगा; और

(घ) रिक्त स्थान की अधिसूचना जारी होने से 60 दिन के भीतर राष्ट्रपति को अपनी गुप्त रिपोर्ट अपने कार्यों के परिणाम के बारे में देगा जिसमें ऐसे पांच नामों की सिफारिश भी होगी जिन्हें पैनल रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये योग्यतम समझता है।"

चुनाव का मानदंड।

3. प्रस्तावित नामनिर्देशिती के चुनाव के लिये आदेश इन मानदंडों का निर्धारण करता है :

(क) राष्ट्रपति को पांच योग्यतम व्यक्तियों के नाम जिसे पैनल द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति किये जाने के लिये उचित पाया गया है, भेजे जाने के पूर्व पैनल द्वारा यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिये कि—

(i) वे व्यक्ति कम से कम एक राज्य के बार के अथवा कोलम्बिया बार के प्रतिष्ठित सदस्य हैं और किसी अन्य बार के प्रतिष्ठा प्राप्त सदस्य हैं।

1. अमेरिकन बार असोसियेशन जर्नल (अप्रैल, 1977) 554 में टिप्पणी जिसमें एक्जीक्यूटिव आर्डर 11972 निर्दिष्ट है, "यू०एस०सरकिट जजेज नामिनेशन कमीशन" प्रेसीडेन्शियल डाक्यूमेंट्स, भाग 13, सं० 8, पृष्ठ 214, दिनांक 21 फरवरी, 1977।

(ii) वे चरित्रवान और इमानदारी के लिये प्रसिध्द हैं;

(iii) वे स्वस्थ व्यक्ति हैं ;

(iv) उन्होंने उत्कृष्ट कानूनी योग्यता और विधि के समक्ष समान न्याय के लिये प्रतिबध्दता प्रदर्शित की है और वैसे स्वयं भी हैं ;

(v) उनके व्यवहार, चरित्र और व्यक्तित्व से यह पता चलना चाहिये कि यदि उनकी नियुक्ति यूनाइटेड स्टेट सरकिट न्यायाधीश पद के लिये की गई तो वे न्यायिक रुझान दिखावेंगे ।

(ख) पैनल द्वारा राष्ट्रपति को प्रेषित किये जाने वाले व्यक्तियों के नामों के के चुनाव में उनका प्रशिक्षण, अनुभव और विशेषज्ञता का विचार इस दृष्टि से किया जाना चाहिये कि क्या ऐसा व्यक्ति कोर्ट आफ अपील्स की जहां स्थान रिक्त है, पूर्ण योग्य व्यक्तियों की संभावित आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगा ।

(ग) उपर्युक्त मानदंडों को कार्य रूप में लाने के लिये पैनल अन्य अतिरिक्त कसौटियों, या पद निदेशक सिध्दान्तों, जिसे वह उपयुक्त समझता है, को अपना सकता है जिससे कि संभावित नामनिर्देशिती की पहचान और योग्यतम व्यक्ति का चुनाव हो सके तो जो यूनाइटेड स्टेट्स सरकिट न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकें ।

आयोग का कोई भी सदस्य पद पर रहते हुए अथवा पद से मुक्त होने की एक वर्ष की अवधि तक संभावित नामनिर्देशिती नहीं हो सकता है। सदस्यों को कोई भी मुओवजा नहीं मिलेगा । वे केवल यात्रा भत्ता प्राप्त कर सकते हैं ।

4. पैनल के लिये नियुक्ति रिपोर्ट प्रेषित होने के 30 दिन बाद, समाप्त हो जावेगी । पैनल में रिक्त स्थान होने पर राष्ट्रपति उस स्थान की पूर्ति के लिए उचित समय के अन्दर किसी व्यक्ति की नियुक्ति करेगा । यह रिक्तता नियुक्ति की समाप्ति अथवा अन्य कारणों से भी हो सकती है ।

प्रारम्भ में आयोग के कार्यकाल की समाप्ति की तिथि 31 दिसम्बर, 1978 रखी गयी थी किन्तु बाद में राष्ट्रपति द्वारा[1] यह तिथि 31 दिसम्बर, 1981 तक बढ़ा दी गयी ।

5. इसी प्रकार का आदेश[2] फेडरल ज्युडिसियल आफिसर्स के लिये भी जारी किया गया है ।

---

1. आयोग की तिथि के बढ़ाने की सूचना यू०एस० इण्टरनेशनल कम्युनिकेशंस एजेंसी, नई दिल्ली से मौखिक प्राप्त की गई थी ।
2. इक्जीक्युटिव आर्डर सं० 11992 "कमेटी आन सिलेकशन आफ फेडरल ज्युडिसियल आफिसर्स" प्रेसीडेन्शियल डाकयुमेंट्स भाग 13, सं० 22, पृष्ठ 810, दिनांक 30 मई, 1977 ।

परिशिष्ट 2

भारत के विधि आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली

नोट

भारत के विधि आयोग से उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न का गहराई से अध्ययन करने के लिये कहा गया है और नियुक्ति की प्रणाली में सुधार की संभावनाओं का भी पता लगाने की अपेक्षा आयोग से की गई है। इस सुझाव को भी निर्देशित किया गया है कि एक अनौपचारिक परामर्शदाता पैनल भी होना चाहिये जिसमें उच्चतम न्यायालय के तीन अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश हों।

इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत व्यक्त हुये हैं जिनमें निम्न भांति सुझाव है:—

(1) जिस तरह की संवैधानिक व्यवस्था इस समय है उसके अनुसार उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये अनौपचारिक परामर्शदाता पैनल की नियुक्ति की संवैधानिक वैधता संदिग्ध हैं।

(2) यदि यह निश्चय किया जाता है कि संविधान के प्रावधानों का संशोधन किया जाय तो हमें सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामलों को अनियंत्रित ढंग से सार्वजनीन बनाने और भानुमति की पिटारी को खोलने के विरुद्ध सावधानी बरतनी होगी। वर्तमान प्रणाली में पक्षपात अथवा राजनीतिक या दलीय विचारों को न्यायाधीशों की नियुक्ति में लाने के प्रयत्न को समाप्त करने तथा छिद्रों को बंद करने का प्रयत्न होना चाहिये न कि आमूल परिवर्तन करने का। आमूल परिवर्तन तो तभी आवश्यक होंगे जब हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि हमारे संविधान द्वारा निर्धारित न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली मूलतः गलत और इससे आंतरिक दोष हैं। यदि हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि हमारी संविधान द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली सामान्यतया त्रुटि रहित है किन्तु व्यवस्था के वास्तविक व्यवहार में कुछ दोष अथवा छिद्र प्रकट हो गये हैं तब उस समय आमूल परिवर्तन की नहीं वरन् कुछ उपान्तरों की आवश्यकता होगी जिससे वह व्यवस्था और भी दृढ़ हो सके तथा छिद्र या दोष समाप्त हो जाएं। हमारे संविधान द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली प्रथमदृष्ट्या वाद की श्रेणी से सम्बन्धित हैं। इस उद्देश्य के लिये हमारे संस्थापकों द्वारा निर्मित की गई पद्धति अधिक अंशों में पूर्णतः सुविचारित है। इसमें संदेह नहीं है कि व्यवस्था को कार्यरूप देने में कुछ दोष दिखाई पड़े हैं किन्तु वे इस प्रकार के हैं कि समूची व्यवस्था को नष्ट किये बिना भी उनकी परिशुद्धि की जा सकती है। अतएव दोषों की परिशुद्धि करने और छिद्रों को बंद करने का प्रयत्न होना चाहिये।

(3) संवैधानिक बाधाओं को पार कर लेने के पश्चात् अनौपचारिक परामर्शदाता पैनल (शायद इसे न्यायाधीश नियुक्ति आयोग कहना अधिक उपयुक्त होगा जिसे आगे 'आयोग' कहा गया है) नियुक्ति वांछनीय होगी।

(4) इस आयोग के सदस्यों में—

(क) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (पदेन),

(ख) विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री (पदेन),

(ग) तीन अन्य व्यक्ति जिनमें से, हर एक उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश अथवा मुख्य न्यायमूर्ति रह चुका हो।

श्रेणी (ग) के पैनल के सदस्यों की नियुक्ति चार वर्षों के लिये होनी चाहिये । श्रेणी (ग) के व्यक्तियों को सामान्यतः ऐसा होना चाहिये जो पैनल में नियुक्ति के पूर्व उच्चतम न्यायालय में छह वर्ष के भीतर पीठासीन रहे हों। यह सुझाव कि पैनल में केवल उच्चतम न्यायालय के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्ति ही हों, व्यावहारिक नहीं है क्योंकि यह चयन के क्षेत्र को अत्यन्त संकीर्ण बना देगा जो वांछनीय नहीं है ।

पीठासीन मुख्य न्यायमूर्ति को पैनल का अध्यक्ष होना चाहिये। पैनल को न्यायाधीशों के उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिये नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियों की उपयुक्तता के बारे में विचार प्रकट करना चाहिये। पैनल के सदस्यों के विचारों में मतभेद होने की दशा में बहुमत का मत ही पैनल का मत समझा जाना चाहिये ।

पैनल द्वारा दिया गया परामर्श वर्तमान संवैधानिक प्रावधानों में दी गई प्रणाली के अतिरिक्त होगा। राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति को नियुक्त किये जाने की सलाह दिये जाने के पूर्व पैनल का परामर्श अंतिम चरण में ही लिया जाना चाहिये ।

उपर्युक्त प्रस्ताव का एक परिणाम तो यह होगा कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति दो अवस्थाओं में सामने आयेगा, एक, वर्तमान समय में प्रचलित व्यवहार और संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुरूप और, दूसरे समय, पैनल के अध्यक्ष के रूप में। व्यवस्था की प्रकृति के अनुसार ही इसका कोई विकल्प नहीं है। पैनल की सभा में मुख्य न्यायमूर्ति अन्य सदस्यों को उन तथ्यों से अवगत करायेगा जो उसे दृष्टिगत हुए होंगे। वह कुछ मामलों को स्पष्ट भी कर सकेगा। पैनल को यह भी स्वतंत्रता प्राप्त होगी कि विशेष मामलों में यदि उचित समझे तो अनौपचारिक रूप से बार के किसी सदस्य, महान्यायवादी, महासालिसिटर या महाधिवक्ता से परामर्श करें ।

इसके अतिरिक्त में निम्न सुझाव हैं:—

(i) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के समय, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को संस्तुति करने के पूर्व दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिए। संस्तुतियों वाले पत्र में मुख्य न्यायमूर्ति को यह ब्यान करना चाहिए कि उसने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श किया है और उनका इस संस्तुति के सम्बन्ध में क्या मत रहा है। साधारणतया मुख्य न्यायमूर्ति के मत से दो वरिष्ठतम सहकर्मियों के मत से मेल खाने वाला मत ही स्वीकार किया जाना चाहिए ।

(ii) इसी प्रकार का रास्ता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति में भी अपनाया जाना चाहिए ।

(iii) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति में साधारणतया वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रांत कर कोई भी कनिष्ठ न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाना चाहिये ।

(iv) यदि मुख्य न्यायमूर्ति के लिए वरिष्ठतम न्यायाधीश की नियुक्ति उपयुक्त नहीं हो तो किसी अन्य उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति अथवा न्यायाधीश साधारणतया मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए।

(v) इसके अलावा भी हमें बहुधा बाहर के न्यायाधीश को उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करना चाहिए। इस प्रस्ताव की एक हानि तो यह है कि बाहर का मुख्य न्यायमूर्ति स्थानीय प्रतिभाओं से परिचित नहीं होगा किन्तु यह लाभ होगा कि दीर्घकाल तक का साथ होने के कारण व्यक्ति की जो निजी पसन्द और न पसन्द बन जाती है उनसे भी वह

व्यक्ति मुक्त रहेगा। बाहरी व्यक्ति को स्थानीय प्रतिभाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में कोई अधिक समय नहीं लगेगा। एक बाहरी व्यक्ति मुख्य न्यायमूर्ति के पद को अधिक अनाशक्ति और निष्पक्षता प्रदान करेगा। अतएव हानि से लाभ अधिक है।

(vi) हमें एक परम्परा बनानी चाहिए कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक तिहाई संख्या में न्यायाधीश बाहर के राज्यों के हों। यह साधारणतः प्रारम्भिक नियुक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए स्थानान्तरण के द्वारा नहीं। यह कार्य धीरे-धीरे और क्रमिक रूप से किया जाना चाहिए और इस अनुपात में पहुंचने में कुछ वर्ष भी लग सकते हैं।

एक बार यदि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कुछ प्रतिशत राज्य के बाहर का हो तब तो वांछित परिणाम को प्राप्ति का उपाय भी तय हो जावेगा। एक सुझाव संभवतः यह हो सकता है कि प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करते समय यह भी उल्लेख करें कि वह व्यक्ति राज्य के बाहर नियुक्ति से सहमत है अथवा नहीं। यदि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति का प्रस्ताव हो तो पदोन्नयन का अवसर ही अधिकतर मामलों में पर्याप्त उत्प्रेरणा होगी और इस तरह राज्य के बाहर की नियुक्ति की असुविधा समाप्त हो जावेगी। जहां तक अधिवक्ताओं का सम्बन्ध है कुछ लोग राज्य के बाहर की नियुक्ति को लाभप्रद समझ सकते हैं क्योंकि अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् यदि वे चाहें तो अपने ही राज्य में जहां वे पहले वकालत करते थे फिर से वकालत प्रारम्भ कर सकते हैं।

(vii) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में वरिष्ठतम न्यायाधीश को नियुक्त करने की सामान्य परम्परा होना चाहिए। इस परम्परा से हटने का कोई कारण नहीं होना चाहिए जब तक कि आयोग द्वारा कोई अन्य मार्ग अनुमोदित न कर दिया जाय।

अतः यह निवेदन किया जाता है कि आपके विचार निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्राप्त हों —

(1) क्या हमारे संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए निर्धारित प्रणाली बहुलांश में निर्दोष है अथवा आवश्यकता है कि इस प्रणाली को तिरस्कृत कर इसके स्थान पर पूर्णतः नई प्रणाली लायी जाय?

(2) क्या हमारे संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए निर्धारित प्रणाली का कार्यरूप ग्रहण करने में कुछ दोष अथवा छिद्र दिखाई पड़े है?

(3) क्या आपका ऐसा मत है कि इन दोषों अथवा छिद्रों का रूप ऐसा है जिसे समूची प्रणाली का बिना तिरस्कार किए बन्द अथवा दूर किया सकता है?

(4) न्यायाधीश नियुक्ति आयोग (अथवा अन्य जो भी नाम इसे दिया जाय) के सम्बन्ध में आपका क्या मत है?

(5) यदि आपका यह मत है कि उपर्युक्त आयोग का रहना वांछनीय है, तो क्या आप आयोग की संरचना के बारे में ऊपर दिए मत से सहमत हैं? यदि आप उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं तो आप की राय में आयोग के अध्यक्ष और सदस्य कौन होने चाहिए? कृपया कर यह भी सुनिश्चित बताएं कि आयोग के सदस्यों की संख्या क्या हो?

(6) आयोग के सदस्यों में वकालत करने वाले बार के सदस्यों (इसमें राजकीय भी सम्मिलित हैं) को रखने के बारे में आपका क्या मत है ?

(7) क्या आप यह अधिक वांछनीय समझते हैं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामलों में, महा न्यायवादी, महासालिसिटर, महाधिवक्ता तथा बार के सदस्यों से अनौपचारिक रूप से आयोग परामर्श करें या कि बार के सदस्यों को आयोग का सदस्य रखना अधिक वांछनीय समझते हैं ?

(8) आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि संस्तुति करने के पूर्व उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति को अपने से वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिए और संस्तुति में प्रत्येक के मतों का विवरण देना चाहिए ? आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि जिस संस्तुति से दोनों वरिष्ठतम सहयोगी सहमत हों वह संस्तुति-साधारणतया स्वीकार कर ली जानी चाहिए ?

(9) आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति में किसी वरिष्ठतम न्यायाधीश को अधिक्रांत कर कनिष्ठ न्यायाधीश को नियुक्त समान्यतया नहीं किया जाना चाहिए ?

(10) आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि जहां उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिए वरिष्ठतम न्यायाधीश की नियुक्ति उपयुक्त नहीं समझी जाती वहां किसी अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अथवा मुख्य न्यायमूर्ति को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाना चाहिए ?

(11) इस सुझाव के बारे में आपका क्या विचार है कि हमें बहुधा बाहर के राज्य के न्यायाधीश को उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करना चाहिए ?

(12) इन सुझाव के बारे में आपका क्या विचार है कि हमें एक ऐसी परम्परा की नींव डालनी चाहिए जिसके अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक तिहाई न्यायाधीश उस राज्य के बाहर के होने चाहिए ?

(13) आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करने की परम्परा होनी चाहिए और इस परम्परा का पालन अवश्य होना चाहिए जब तक कि आयोग द्वारा किसी अन्य मार्ग का अनुमोदन न किया जाय ?

(14) क्या आयोग को यह अधिकार होना चाहिए कि —

(क) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों;

(ख) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति;

(ग) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, और

(घ) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के लिए अभी तक संस्तुति न किए हुए नाम का सुझाव दें सकें ?

यदि उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर कुछ श्रेणियों के लिए हां में हो और कुछ श्रेणियों के लिए न में हो तो उसे निर्दिष्ट किया जाय।

(15) आपका इस सुझाव के बारे में क्या मत है कि वर्तमान संवैधानिक प्राव- धानों के अन्तर्गत वर्तमान प्रणाली के अतिरिक्त आयोग से परामर्श लिया जाना चाहिए और यह परामर्श राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त करने के पूर्व अन्तिम चरण में लिया जाना चाहिए ?

(16) क्या आयोग की संस्तुति शासन के लिए बाध्यकर होनी चाहिए ? शासन और आयोग की संस्तुति से असहमति की स्थिति में आप क्या सुझाव देते हैं ?

(17) यदि आप ऐसा समझते हैं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की समूची प्रणाली तिरस्कृत कर दी जानी चाहिए तो आप के मत में नयी प्रणाली क्या हो ?

(18) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए ऐसे नामों का सामान्य पैनल अथवा पूल (pool) बनाने के बारे में आपका क्या मत है जिन्होंने राज्य के बाहर नियुक्ति के लिए अपनी सहमति दी हो ?

(19) आपके मत में —

(क) उच्च न्यायालय, और

(ख) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्तियों का वय: समूह क्या होनी चाहिए ?

(20) अन्य कोई सुझाव जो आप इस सम्बन्ध में देना चाहें ।

परिशिष्ट 3

प्रश्नावली के परिणामों का सारणीकरण

आयोग द्वारा प्रसारित प्रश्नावली आगे उद्धति[1] की जा चुकी है। उच्च न्यायालयों, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, सुप्रसिद्ध न्यायविदों तथा राज्य सरकारों[2] से प्रश्नावली के आधार पर प्राप्त उत्तरों को सारणीकरण प्रश्नशः नीचे संक्षेप में किया जा रहा है।

प्रश्न संख्या 1

(क) सात उच्च न्यायालयों ने वर्तमान प्रणाली को बहुलांश में निर्दोष माना है।

(ख) ऐसा ही एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश और मुख्य न्यायामूर्ति तथा अन्य एक उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश मानते हैं।

(ग) एक प्रसिद्ध न्यायविद ने विचार व्यक्त किया है कि वर्तमान प्रणाली पर्याप्त नहीं है, कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता है।

(घ) चार राज्य सरकारों और एक विधि सचिव ने प्रणाली को त्रुटिरहित माना तथा अन्य एक राज्य सरकार ने पूर्णतः नई प्रणाली, के लिए इच्छा प्रकट की है।

प्रश्न संख्या 2

(क) चार उच्च न्यायालयों के अनुसार वर्तमान प्रणाली में कुछ दोष परिलक्षित हुए हैं यद्यपि वे दोष ऐसे नहीं हें जिसके कारण वर्तमान प्रणाली बदली जाय। दो उच्च न्यायालयों को वर्तमान प्रणाली में कोई दोष या गंभीर दोष नहीं मिला। जिन त्रुटियों को देखा गया है वे हैं राजनैतिक अथवा जाति के आधार पर नियुक्तियां और राज्य सरकार द्वारा नए नाम का सुझाव ;

(ख) एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों द्वारा और एक अन्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा कुछ दोष देख गए है। उन्होंने उदाहरण के लिए एक दोष का जिक्र किया है---राज्य सरकार द्वारा एक नए नाम का सुझाव और राज्य सरकार में मामले को अधिक दिनों तक लटका रखने से देरी।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् का विचार है कि प्रणाली में कुछ दोष हैं।

(घ) तीन राज्य सरकारों और एक विधि सचिव ने कहा है कि वर्तमान प्रणाली में कुछ दोष हैं। एक राज्य सरकार का मत है कि वर्तमान प्रणाली में कोई बड़ा दोष नहीं है।

प्रश्न संख्या 3

(क) दो उच्च न्यायालयों के अनुसार उनके प्रश्न संख्या दो के उत्तर से प्रश्न संख्या 3 का उत्तर उन्हें देने की आवश्यकता नहीं है। एक उच्च न्यायालय ने प्रश्न तीन का उत्तर ही नहीं दिया है। चार उच्च न्यायालयों ने मत व्यक्त किया है कि ये दोष बिना वर्तमान प्रणाली का पूर्ण तिरस्कार किए ही छिद्रों को बन्द कर दूर किए जा सकते हैं।

---

1. परिशिष्ट 2
2. एक राज्य सरकार की ओर से विधि सचिव का उत्तर प्राप्त हुआ है।

(ख) उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों तथा मुख्य न्यायमूर्ति तथा अन्य उच्च न्यायालय के कुछ अन्य न्यायाधीशों का मत है कि दोषों को दूर किया जा सकता है।

(ग) यह ही मत एक सुप्रसिद्ध न्यायविद का भी है।

(घ) तीन राज्य सरकारों और एक विधि सचिव ने विचार प्रकट किया है कि दोष दूर किए जा सकते हैं जब कि एक राज्य सरकार का मत है कि आमूल परिवर्तन किया जाना चाहिए।

प्रश्न सं० 4

(क) "एक उच्च न्यायालय ने न्यायाधीश नियुक्ति आयोग" का समर्थन किया है। छह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्ति आयोग के विरुद्ध हैं।

(ख) एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और पांच न्यायाधीश इसके विरोधी हैं। किन्तु अन्य एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने इसका समर्थन किया है।

(ग) "एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् ने न्यायाधीश नियुक्ति आयोग" का अनुमोदन किया है।

(उन्होंने इस सम्बन्ध में एक सुविस्तृत सुझाव भेजा है)

(घ) दो राज्य सरकारों ने इसे वांछनीय बताया है। दो राज्य सरकारों तथा एक विधि सचिव ने इसे वांछनीय नहीं माना है।

प्रश्न सं० 5

(क) प्रश्न सं० 4 के अपने उत्तर के कारण छह उच्च न्यायालयों ने प्रश्न सं० 5 का कोई उत्तर नहीं भेजा है। एक उच्च न्यायालय के अनुसार (जिसने प्रश्न 4 के उत्तर में विचार का समर्थन किया है) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और विधि मंत्री को उसका पदेन सदस्य होना चाहिए। इसका सुझाव है कि तीन अन्य व्यक्तियों की जो अन्य न्यायमूर्ति अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हों भी सदस्य नियुक्त किया जा सकता है।

(ख) एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने (जिन्होंने प्रश्न 4 के उत्तर में प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया है) प्रश्न 5 का उत्तर नहीं दिया है। एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने (प्रश्न चार के उत्तर में समर्थन किया है) कहा है कि आयोग के तीन सदस्य सेवारत होने चाहिए न कि अवकाश प्राप्त होने चाहिए।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् ने मत व्यक्त किया है कि इस प्रकार गठित होने वाला निकाय (चाहे अनधिकारिक हो अथवा संवैधानिक) न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं का मिलाजुला नहीं होना चाहिए। यह बड़ा भी नहीं होना चाहिए।

(घ) एक राज्य सरकार का मत है कि प्रस्तावित आयोग का गठन उचित रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए और इसकी सदस्य संख्या सात या नौ होनी चाहिए। दो राज्य सरकारों और एक विधि सचिव ने आयोग गठन के विचार का ही विरोध किया है। एक अन्य राज्य सरकार का मत है कि—

(i) विधि मंत्री की बजाय अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्ति को सदस्य बनाया जाना चाहिए ;

(ii) भारत के सेवारत मुख्य न्यायमूर्ति को कहने का अवसर प्राप्त होता ही है अतः अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायमूर्ति को ही प्रस्तावित आयोग का अध्यक्ष होना चाहिए (वर्तमान मुख्य न्यायमूर्ति की बजाय)।

प्रश्न सं० 6

(क) छह उच्च न्यायालयों के अनुसार उनके प्रश्न 4 के उत्तर के कारण इस प्रश्न पर विचार प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। एक उच्च न्यायालय का मत है कि राजकीय वकील और बार के वकालत करने वाले सदस्यों को आयोग में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

(ख) एक उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों का मत है के कि बार के वकालत करने वाले सदस्य इसके सदस्य नहीं होने चाहिए।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् का मत है कि इस अनधिकारी निकाय के सदस्यों में भारत के महा अन्यायवादी और सभी राज्यों के महा अधिवक्ताओं को भी सदस्य होना चाहिए। न्यायाधीशों और वकीलों का मिलाजुला निकाय नहीं होना चाहिए क्योंकि अधिकांश वकील न्यायाधीशों की उपस्थिति में अपना मत स्वतंत्रता पूर्वक नहीं व्यक्त कर सकेंगे। बार एसीसियेशन के प्रतिनिधियों को भी इसमें सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए क्यों-कि बार एसोसियेशन भी विधान सभाओं की भांति धर्म और जाति के आधार पर विभाजित हैं।

(घ) दो राज्य सरकारें और एक विधि सचिव आयोग की नियुक्ति के विरुद्ध हैं। एक राज्य सरकार के अनुसार वकालत कर रहे अधिवक्तागण और राजकीय अधिवक्ता आयोग के सदस्य नहीं बनाए जाने चाहिए। एक अन्य राज्य सरकार के अनुसार वकालत करने वाले अधिवक्ता आयोग के सदस्य हो सकते हैं किन्तु आवश्यक नहीं है।

प्रश्न सं० 7

(क) छह उच्च न्यायालयों के अनुसार उन के प्रश्न सं० 4 के उत्तर के कारण इस प्रश्न की कोई आवश्यकता नहीं है। एक उच्च न्यायालय के मत में आयोग महान्यायवादी, महा सालिसटर या महाधिवक्ता से परामर्श कर सकता है।

(ख) एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति तथा पांच न्यायाधीशों तथा अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों के अनुसार प्रश्न सं० 7 उत्पन्न ही नहीं होता है।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविध ने प्रश्न सं० 6 को ही निर्दिष्ट किया है (ऊपर)।

(घ) चार राज्य सरकारों और एक विधि सचिव ने आयोग की नियुक्ति का अनुमोदन नहीं किया है और उनके लिए प्रश्न सं० 7 उत्पन्न ही नहीं होता। एक राज्य सरकार का मत है कि बार के सदस्यों को किसी भी चरण में परामर्श नहीं लिया जाना चाहिए। एक राज्य सरकार के अनुसार बार का वकालत में रत

सदस्य से परामर्श किया जा सकता है (जैसा प्रश्न सं० 6 के उत्तर में सुझाव दिया गया है)। किन्तु यदि वह व्यावहारिक नहीं है तो महाधिवक्ता से अनौपचारिक परामर्श किया जाना चाहिए।

प्रश्न सं० 8

(क) तीन उच्च न्यायालय प्रश्न सं० 8 के सुझाव से सहमत हैं। वे इस सुझाव से भी सहमत हैं कि सामान्यतया मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति जिससे दो वरिष्ठतम सहयोगी सहमत हो, स्वीकार ली जानी चाहिए एक उच्च न्यायालय के अनुसार कुछ ऐसा प्रावधन होना चाहिए कि—

(i) जहां उच्च न्यायालय में 14 या उससे अधिक न्यायाधीश हो वहां 7 न्यायाधीशों से; और

(ii) जहां उच्च न्यायालय में 14 से कम न्यायधीश हों वहां 5 न्यायाधीशों से परामर्श लिया जाय।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति की संस्तुति सामान्यतया स्वीकार कर ली जानी चाहिए।

तीन उच्च न्यायालय प्रश्न सं० 8 के सुझाव से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि इस तरह से उच्च न्यायालय का सामंजस्यपूर्ण वातावरण नष्ट हो जायगा और इससे दल बन्दी को बढ़ावा मिलेगा। मामला मुख्य न्यायमूर्ति के विवेक पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए।

(ख) एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश सुझाव से सहमत हैं किन्तु उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति सहमत नहीं हैं क्योंकि इससे दल बन्दी और धड़ेबन्दी को बढ़ावा मिलेगा। एक अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश इस सुझाव से सहमत हैं किन्तु एक न्यायाधीश सहमत नहीं है।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद इस मत के हैं कि अनुच्छेत 217 के प्रावधान "पूर्णतया अपर्याप्त" हैं। उनके मत में एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के परामर्श से अथवा तीन मुख्य न्यायमूर्ति गण अथवा देश के सभी मुख्य न्यायमूर्तिगण के परामर्श से किया जाना चाहिए।

(घ) चार राज्य सरकारों और एक विधि सचिव इस सुझाव से सहमत हैं कि वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श किया जाना चाहिए और उनके द्वारा अनुमोदित मुख्य न्यायमूर्ति का प्रस्ताव साधारणतया स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। इनमें से कुछ ने आगे यह भी कहा है कि मुख्य न्यायमूर्ति को अपने सहयोगियों के मत को भी संस्तुति में उद्धृत करना चाहिए।

प्रश्न संख्या 9

(क) सात उच्च न्यायालय सुझाव से सहमत हैं।

(ख) एक उच्च न्यायालय के छह न्यायाधीश और मुख्य न्यायमूर्ति तथा एक अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश भी सहमत हैं।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद का मत है कि कनिष्ठ न्यायाधीशों की नियुक्ति सामान्यतया अधिक्रमित नहीं की जानी चाहिये जब तक कि अनुच्छेद 124 संशोधित न कर दिया जाय अथवा स्थायी आयोग न नियुक्त हो जाय।

(च) एक राज्य सरकार और एक विधि सचिव सुझाव से सहमत हैं। एक राज्य सरकार के अनुसार यदि वरिष्ठतम न्यायाधीश मुख्य न्यायमूर्ति नहीं नियुक्त किया जाता है तो प्रस्तावित आयोग का अनुमोदन अवश्य लिया जाय। दो राज्य सरकारें इस सुझाव के विरुद्ध हैं। एक का मत है कि वरिष्ठता को नहीं वरन् योग्यता को ही विचारणीय मानना चाहिये।

प्रश्न सं० 10

(क) एक उच्च न्यायालय प्रश्न में दिये सुझाव से सहमत है किन्तु उसका यह भी कहना है कि अन्य उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या न्यायाधीश यदि मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाता है तो उसे भी इस उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश से वरिष्ठ होना चाहिये (उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अखिल भारतीय कैडर में)।

छह उच्च न्यायालय प्रश्न में दिये सुझाव के विरोधी हैं। उनमें से कुछ ने कहा है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के पूर्व भी अनेक स्तरों पर उसकी उपयुक्ता की जांच की जाती है। अतः यह कहना बहुत कठिन है कि वरिष्ठतम न्यायाधीश मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त होने योग्य नहीं है। इनमें से एक उच्च न्यायालय का कहना है कि यदि वरिष्ठतम न्यायाधीश मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त होने योग्य नहीं हो तो भी बाहरी व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाना चाहिये। उसके बाद दूसरा वरिष्ठतम न्यायाधीश ही नियुक्त किया जाना चाहिये।

(ख) व्यक्तिशः उत्तर भेजने वाले एक न्यायालय के न्यायाधीशों में से चार न्यायाधीश सुझाव के विरोधी हैं जबकि मुख्य न्यायमूर्ति और दो न्यायाधीशों ने इसका समर्थन किया है। अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश सहमत हैं।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् ने सुझाव के साथ सहमति व्यक्त करते हुये कहा है कि कोई कठोर नियम नहीं होना चाहिये, बार के प्रतिभाशाली सदस्य का भी नाम विचारणीय हो सकता है।

(घ) एक राज्य सरकार का मत है कि यदि वरिष्ठतम न्यायाधीश की नियुक्ति उपयुक्त नहीं समझी जाती है तो अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में लाया जा सकता है किन्तु इस उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को किसी अन्य उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाना चाहिये।

एक राज्य सरकार ने सुझाव का अनुमोदन बहुत ही सीमित क्षेत्र तक ही किया है। मुख्य न्यायमूर्ति उसी राज्य का होना चाहिये जहां उच्च न्यायालय स्थित है। यदि किसी असाधारण परिस्थिति में बाहरी राज्य के व्यक्ति को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाता है तो ऐसे न्यायाधीश को उस राज्य की भाषा में निष्णात होना चाहिये।

दो राज्य सरकारों ने बाहर के उच्च न्यायालय से न्यायाधीश नियुक्त किये जाने का विरोध किया है। उनमें से एक ने कहा है कि बाहर के राज्य से न्यायाधीश नियुक्त करना केवल समस्या को ओझल करना है उसका मत है कि वरिष्ठतम न्यायाधीश ही मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त होना चाहिये।

एक विधि सचिव सुझाव से सहमत है किन्तु उसका यह भी कहना है कि बाहर के न्यायाधीश की नियुक्ति केवल भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की इच्छा पर होनी चाहिये, जिसे अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिये।

प्रश्न सं० 11

(क) एक उच्च न्यायालय के अनुसार बाहर के न्यायाधीश की मुख्य न्यायमूर्ति पद पर नियुक्ति प्रश्न सं० 10 में दी हुयी परिस्थितियों में ही की जाय। एक अन्य उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायमूर्ति सुझाव से सहमत हैं किन्तु अन्य न्यायाधीश असहमत हैं। पांच उच्च न्यायालय सुझाव के विरोधी हैं।

(ख) व्यक्तिश: न्यायाधीशों में से एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश और एक अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश सुझाव के विरोधी हैं।

(ग) एक सुप्रसिध्द न्यायविद् ने सुझाव से सहमति व्यक्त की है।

(घ) एक राज्य सरकार सुझाव से तो सहमत है किन्तु इसने क्षेत्रीयता भाषा की बात को ध्यान में रखने पर बल दिया है। एक विधि सचिव का कथन है कि बाहरी को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाय। किन्तु केवल वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही नियुक्त किया जाय यह बात अनुपयुक्त है।

एक राज्य सरकार ने इस प्रश्न का सुनिश्चित उत्तर नहीं दिया है और दो सरकारों ने विरोध किया हैं।

प्रश्न सं० 12

(क) तीन उच्च न्यायालय सुझाव से सहमत हैं किन्तु उनमें से—

(i) एक ने केवल सिध्दान्त से सहमति व्यक्त की है और कहा है कि इसमें व्यावहारिक (भाषा आदि) कठिनाइयां है;

(ii) एक अन्य ने केवल सापेक्ष सहमति व्यक्त की है और उच्च न्यायालय के एक तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति अन्य राज्य से केवल बराबर के लेन देन के आधार पर होनी चाहिये।

तीन उच्च न्यायालय सुझाव के विरोधी हैं। उनके मतानुसार यह अव्यवहारिक है। एक न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति सहमत है किन्तु अन्य न्यायाधीश नहीं।

(ख) व्यक्तिश: न्यायाधीशों में भी राय अलग-अलग है। मुख्य न्यायमूर्ति का मत था कि सुझाव मानने से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होगा। एक अन्य उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश सुझाव से सहमत हैं, कि एक असहमत है और चार न्यायाधीशों ने कहा है कि केवल इच्छा रखने वाले न्यायाधीशों का स्थानान्तरण होना चाहिये। कोई परम्परा नहीं होनी चाहिये।

(ग) एक सुप्रसिध्द न्यायविद ने सुझाव से पूर्ण सहमति व्यक्त की है।

(घ) दो राज्य सरकारें और एक विधि सचिव सुझाव से सहमत हैं। इसके अतिरिक्त एक राज्य सरकार का मत है कि राज्य के बाहर के 1/5 न्यायाधीश होने चाहिये, इसी राज्य सरकार ने यह भी कहा है कि न्यायाधीशों की 1/5 संख्या जिला में वकालत कर रहे वकीलों में से होनी चाहिये। एक राज्य सरकार निश्चित अनुपात में बाहर के न्यायाधीशों की नियुक्ति का पक्ष नहीं लिया है किन्तु सुझाव से सहमति व्यक्त करते हुये कहा है कि बाहर के न्यायाधीशों को नियुक्त करने का प्रयत्न होना चाहिये।

प्रश्न सं० 13

(क) सात उच्च न्यायालयों ने प्रश्न में दिये गये सुझाव को माना है (सुझाव कि वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति पद पर नियुक्त करने की सामान्य परम्परा होनी चाहिये) इनमें से पांच ने कहा है कि इस परम्परा का त्याग नहीं किया जाना चाहिये, छठे उच्च न्यायालय के अनुसार परम्परा का त्याग बिना उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तिगण की संख्या के दो तिहाई की सहमति के नहीं होना चाहिये। सातवें उच्च न्यायालय के अनुसार बिना आयोग के अनुमोदन के परम्परा का त्याग नहीं किया जाना चाहिये।

(ख) व्यक्तिशः न्यायाधीशों के उत्तरों में से एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों ने प्रश्न में दिए सुझाव से सहमति व्यक्त की है। एक अन्य उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने प्रश्नगत सुझाव से सहमति व्यक्त करते हुये कहा है कि परम्परा का परित्याग तभी होना चाहिए जब तक कि पांच वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श न ले लिया जाय।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद का मत है कि ऐसी परिस्थिति के संदर्भ में जहां तत्कालीन शासन का विश्वास नहीं किया जा सकता है कि वह अनुच्छेद 124(2) की भावना का पालन करेगा, कम से कम पांच वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श किया जाना चाहिए, और यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति उच्चतम न्यायालय के बाहर से की जाती हो तब सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तिगण से परामर्श किया जाना चाहिए। जहां तक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति का प्रश्न है उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों से परामर्श लिया जाना चाहिए।

प्रश्न सं० 14

(क) केवल उस उच्च न्यायालय ने जिसने न्यायाधीश नियुक्ति आयोग के प्रस्ताव का समर्थन किया है, कहा है कि प्रस्तावित आयोग को उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय या मुख्य न्यायामूर्ति पद पर नियुक्ति के लिए किसी नए नाम का सुझाव देने का अधिकार नहीं होना चाहिए। जहां तक उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति का सम्बन्ध है यदि उच्च न्यायालय के सभी न्यायमूर्ति वरिष्ठता के क्रम में अनुपयुक्त हों तभी प्रस्तावित आयोग द्वारा उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति का नाम प्रस्तावित किया जाय।

(ख) एक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश का मत है कि प्रस्तावित आयोग को नए नाम का सुझाव देने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् के अनुसार प्रस्तावित आयोग को न्यायाधीश पद के लिए नए नाम का सुझाव देने का अधिकार तो होना चाहिए किन्तु मुख्य न्यायमूर्ति पद के लिए नहीं होना चाहिए।

(घ) आयोग की नियुक्ति का समर्थन करने वाली दो राज्य सरकारों में से एक ने आयोग को नए नाम का सुझाव देने के अधिकार का समर्थन किया है किन्तु दूसरे इसका विरोध इस आधार पर किया है कि आयोग केवल परामर्शदाता निकाय है।

प्रश्न सं० 15

(क) आयोग के प्रस्ताव का समर्थन करने वाले एक मात्र उच्च न्यायालय का मत है कि इससे परामर्श अन्तिम चरण में ही होना चाहिए और यह वर्तमान संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त होना चाहिए।

(ख) यह ही मत एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का है।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद ने कहा है कि आयोग से परामर्श वर्तमान प्रणाली के अतिरिक्त होना चाहिए और वर्तमान संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुरूप होना चाहिए।

(घ) उन दो राज्यों में से जिन्होंने आयोग का पक्ष लिया है, एक राज्य सरकार का मत है कि आयोग से परामर्श वर्तमान संवैधानिक व्यवस्थाओं के अतिरिक्त होना चाहिए और यह अन्तिम चरण में होना चाहिए। दूसरी राज्य सरकार ने कहा है कि शासन का मत ही निर्णायक होना चाहिए।

प्रश्न सं० 16

(क) अकेले उच्च न्यायालय ने जिसने प्रस्ताव का समर्थन किया है, कहा है कि आयोग की संस्तुति शासन पर बाध्यकारी होनी चाहिए।

(ख) यह ही विचार एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का है।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद का मत है कि आयोग की कार्यविधि की कुछ दिनों तक जांच होनी चाहिए। चाहे आयोग से परामर्श संविधान के अन्तर्गत ला दिया जाय फिर भी वर्तमान व्यवस्था में जहां मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति ही बाध्यकारी नहीं है, संभव नहीं है। फिर भी सुसंगत अनुच्छेद में उपयुक्त प्रावधान कर दिया जाय कि सरकार ऐसे किसी व्यक्ति को नियुक्त नहीं करेगी जिसको आयोग के बहुमत, मुख्य न्यायमूर्ति और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का अनुमोदन न प्राप्त हो।

(घ) आयोग का समर्थन करने वाली राज्य सरकारों में से एक का मत है कि इसकी संस्तुति सुझाव के प्रकार की होनी चाहिए किन्तु दूसरे ने इसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया है।

प्रश्न सं० 17

(क) उच्च न्यायालयों में से केवल तीन ने इस प्रश्न का सुनिश्चित उत्तर दिया है। एक ने कहा है कि यह अपरिवर्तनीय परम्परा होनी चाहिए कि वरिष्ठतम न्यायाधीश ही उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त हो। किन्तु अन्य उच्च न्यायालय के अनुसार यह एक सामान्य परम्परा होनी चाहिए। आयोग से परामर्श अथवा अनुमोदन का कोई प्रश्न नहीं है। तीसरे उच्च न्यायालय के अनुसार वर्तमान प्रणाली का परित्याग नहीं किया जाना चाहिए।

(ख) उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के अनुसार वर्तमान प्रणाली का परित्याग नहीं किया जाना चाहिए।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद जिसने प्रश्नावली का विस्तृत उत्तर दिया है न्यायाधीशों की नियुक्ति की किसी नई प्रणाली का सुझाव नहीं दिया है।

(घ) प्रश्न 17 का उत्तर देने वाली राज्य सरकारों में से एक ने इस प्रकार की किसी परम्परा का विरोध किया है किन्तु दूसरे ने सुझाव दिया है कि एक स्थान पर नियुक्ति के लिए तीन नामों का पैनल नियुक्ति के लिए शासन के विचारार्थ भेजा जाना चाहिए। और अन्तिम इच्छा शासन पर छोड़ देना चाहिये जो तीन नामों में से एक का चुनाव करें।

प्रश्न सं० 18.

(क) छह उच्च न्यायालयों ने इस प्रश्न पर सुनिश्चित विचार प्रकट किए हैं। इनमें से एक उच्च न्यायालय ने राज्य के बाहर से एक तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति की परम्परा का समर्थन किया है किन्तु यह प्रश्न सं० 12 के उत्तर को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। दूसरे उच्च न्यायालय ने एक सामान्य पूल का समर्थन किया है—और साथ ही भाषा के कारण होने वाली कठिनाई की ओर ध्यान दिलाया है। शेष चार उच्च न्यायालयों ने प्रस्ताव का विरोध किया है।

(ख) एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों ने विरोध किया है किन्तु अन्य एक उच्च न्यायालय के छह न्यायाधीशों ने भी यह कह कर विरोध किया है कि इस से द्वितीय श्रेणी के लोग प्रवेश प्राप्त कर लेंगे।

(यदि प्रस्ताव क्रियान्वित किया गया)

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद् ने सामान्य पूल अथवा व्यक्तियों का पूल रखने का समर्थन किया है। यह पूल ऐसे व्यक्तियों का होना चाहिए जिन्होंने अन्य राज्य में स्थानान्तरित किए जाने से सहमति दी हो।

(घ) राज्य सरकारों में से तीन सामान्य पूल से सहमत हैं। एक विरोधी है। विधि सचिव ने भी विरोध किया है।

प्रश्न सं० 19.

प्रश्न संख्या 19 के प्राप्त उत्तरों में विभिन्नता है। निम्नलिखित आयु का सुझाव दिया गया है :—

(क) उच्च न्यायालय

एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	47–50 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55-58 वर्ष
एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	40 वर्ष (कम से कम आयु-सीमा)
एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	50 वर्ष के लगभग
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55 वर्ष सीधे नियुक्ति के लिए
एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	40–50 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50–60 वर्ष
एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	45–55 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50–60 वर्ष

एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	उच्च न्यायालय के लिए आयु का विचार नहीं किया जाना चाहिए।
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	45–55 वर्ष (केवल बार के सदस्यों के लिए)
एक उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	(1) 45–55 वर्ष (बार के सदस्यों के लीए) (ii) 55–58 वर्ष (न्यायिक सेवाओं के सदस्यों के लिए)
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50—60 वर्ष
(ख) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश		
एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	50 वर्ष (न्यूनतम)
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55 वर्ष (न्यूनतम)
एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	नीचे की आयु सीमा 42 वर्ष (सेवाओं से आने वाले व्यक्ति के लिए ऊपर की कोई आयु सीमा नहीं हो।)
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50 वर्ष (नीचे की आयु सीमा)
एक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	45. 55 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55. 60 वर्ष
एक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	47. 55 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55. 62 वर्ष
एक उच्च न्यायालय के चार न्यायाधीश	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	40. 52 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50. 58 वर्ष
(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायविद	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	50 वर्ष (न्यूनतम)
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	55 वर्ष (न्यूनतम) (दोनों ही असाधारण योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति में नमनीय)

(घ) राज्य सरकारें

एक राज्य सरकार	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	45.50 वर्ष
	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश	50.55 वर्ष
एक राज्य सरकार		सामान्यतया 45.58 वर्ष
एक राज्य सरकार		(i) 35 वर्ष की आयु (उच्च न्यायालय के लिए) (ii) 45 वर्ष की आयु (उच्चतम न्यायालय के लिए) पूरी कर ली हो
(ए)क राज्य सरकार		न्यायाधीशों की नियुक्ति की न्यूनतम आयु 50 वर्ष होनी चाहिए कम आयु प्राप्त लोगों को उच्च न्यायालय के लिए नहीं चुना जाना–चाहिए। उच्चतम न्यायालय के लिए न्यूनतम आयु 55 वर्ष होनी चाहिए।

प्रश्न सं० 20

(क) एक उच्च न्यायालय ने सुझाव दिया है कि एक न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति का सुझाव भारत के मुख्य न्यायामूर्ति को सीधे भेज दिया जाना चाहिए। से मुख्य मंत्री अथवा राज्यपाल के माध्यम से नहीं जाना चाहिए। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति की नियुक्ति का कार्य भारत के मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा प्रारम्भ होना चाहिए न कि राज्य सरकार द्वारा।

एक अन्य उच्च न्यायालय का मत है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया समय बद्ध होनी चाहिए विशेष तौर पर मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा संस्तुति किए नाम पर मुख्य मंत्री द्वारा टीका करने का कार्य। यह समयावधि एक माह की होनी चाहिए। यदि एक माह के भीतर किसी प्रकार की टीका प्राप्त नहीं होती है तो ऐसी धारणा कर ली जानी चाहिए कि मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा संस्तुति किए गए नाम का अनुमोदन राज्य सरकार ने कर दिया है।

एक अन्य उच्च न्यायालय ने सुझाव दिया है कि (उच्च न्यायालय के लिए) बार के सदस्य की स्वीकृति प्राप्त होने के छह माह के भीतर नियुक्ति हो

जानी चाहिए। यदि अधिकारीगण उक्त समयावधि के भीतर अपनी राय नहीं भेजते तो यह मान लिया जाना चाहिए कि मुख्य न्यायमूर्ति से उनकी सहमति है। यह भी सुझाव दिया गया है कि बार के सदस्य को 7 वर्षों की सेवा के पश्चात् न्यायाधीश की भांति पूरी पेंशन मिलना चाहिए। यह उच्च न्यायालय सेवाओं से नियुक्ति के लिए किसी निश्चित कोटा का विरोध करता है। इसका सुझाव है कि केवल योग्यता का ही नियुक्ति के लिए विचार किया जाना चाहिए, वरिष्ठता का भी नहीं।

(ख) एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का विचार है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति को अपनी संस्तुति सीधे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को भेज देना चाहिए। इनकी राय में मुख्य मंत्री और न्याय मंत्री से परामर्श संविधान के बाहर की प्रणाली है। एक अन्य उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों का मत है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में राज्य सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और राज्यपाल से परामर्श सम्बन्धी प्रावधान हटा दिया जाना चाहिए। किन्तु उसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति राज्यपाल से परामर्श सम्बन्धी प्रावधान के हटाने के पक्षकर नहीं हैं।

एक उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का बिना इसकी सहमति के स्थानान्तरण नहीं होना चाहिए। इन लोगों का मत है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की संस्तुति के बिना किसी भी व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए और किसी भी व्यक्ति को भारत के मुख्य न्यायामूर्ति की संस्तुति के बिना उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाना चाहिए।

एक अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने मत व्यक्त किया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति की संस्तुत पर ही किया जाना चाहिए और उसकी संस्तुति ही सर्वोपरि होनी चाहिए।

(ग) एक सुप्रसिद्ध न्यायाविद् ने इस सम्बन्ध में कोई संस्तुति नहीं दी है।

(घ) जहां तक राज्य सरकारों का सम्बन्ध है, एक राज्य सरकार का मत है कि मातहत न्यायपालिका से एक तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति उच्च न्यायालयों में होनी चाहिए जिससे अच्छी क्षमता वाले व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित हों। एक अन्य राज्य सरकार का मत है कि कम से कम 60% जिला न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में प्रोन्नत किया जाना चाहिए। इससे नीचे की अदालतों में जहां सामान्य जन के भाग्य का निर्णय होता है, अच्छे और सक्षम लोग वहां आने के लिए आकर्षित होंगे।

एक विधि सचिव की इच्छा है कि उच्च न्यायालय के रिक्त स्थानों में से 50% स्थान जिला न्यायाधीशों और सत्र न्यायाधीशों में से नियुक्तियों द्वारा भरे जायं।

उच्चतम न्यायालय में नियुक्तियों के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश और उनके दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श का सुझाव एक राज्य सरकार ने दिया है।

एक राज्य सरकार का सुझाव है कि किसी न्यायाधीश के अवकाश ग्रहण करने के 6 माह पूर्व ही नियुक्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जानी चाहिए एक अन्य राज्य सरकार को नियुक्ति के लिए विचारणीय प्रत्याशियों के नामों का प्रकाशन 6 सप्ताह पूर्व ही कर दिया जाना चाहिए जिससे कि यदि किसी प्रत्याशी का पिछला कार्यकलाप असंतोष जनक रहा है तो वह सामान्य जन के भी ध्यान में लायाजा सके। इसका कहना है कि सरकार को अन्तिम निर्णय के पूर्व आरोपों की सत्यता अथवा असत्यता के बारे में गुप्त जांच भी करा लेनी चाहिए।

एक विधि सचिव ने सुझाव दिया है कि कम से कम 10 व्यक्तियों का नामों पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए विचार किया जाना चाहिए। और चुनाव वरिष्ठता और योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति का सुझाव जिसे उसने दो वरिष्ठ सहयोगियों के परामर्श के पश्चात् दिया और जिससे राज्य सरकार भी सहमत है स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। उसने इस बात पर जोर दिया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्ति की पुष्टि, कार्यकाल की वृद्धि और स्थानान्तरण में भारत के मुख्य न्यायामूर्ति का मत ही निर्णयक मत होना चाहिए।

MGIPCBE—S8—6 M of LJ & CA/ND/79—30-6-81

©

PLD. 92. LXXX(H)
500-1980-DSK. IV

मूल्य : भारत में रु० 11.00 व विदेश में £ 1·29 या $ 3·96

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, कोयम्बत्तूर द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित ।

1981